[1987] 3 उम० नि० प० 608

एम० सी० मेहता और एक अन्य

बनाम

भारत संघ और अन्य

20 दिसंबर, 1986

मुख्य न्यायमूर्ति पी० एन० भगवती, न्यायमूर्ति रंगनाथ मिश्र, जी० एल० ओझा, एम० एम० दत्त और के० एन० सिंह

संविधान, 1950 — अनुच्छेद 21--अनुच्छेद 21 में सन्निविष्ट प्राण के मूल अधिकार को प्रवर्तित करने के लिये आवेदन—ऐसे आवेदनों पर विचार करते समय उच्चतम न्यायालय कोई अत्यधिक तकनीकी दृष्टिकोण नहीं अपना सकता जो कि न्याय के उद्देश्यों को विफल बनाए।

2. संविधान, 1950— अनुच्छेद 32—यह अनुच्छेद उच्चतम न्यायालय को मूल अधिकारों के प्रवर्तन के लिए निदेश, आदेश या रिट जारी करने की शक्ति ही केवल प्रदान नहीं करता अपितु यह इस न्यायालय पर लोगों के मूल अधिकारों की संरक्षा करने की सांविधानिक बाध्यता भी डालता है और उस प्रयोजन के लिए इस न्यायालय को वे सभी आनुषंगिक और समानुषंगी शक्तियां प्राप्त हैं जिनके अंतर्गत मूल अधिकारों के प्रवर्तन के लिए नए उपचारों को रचने की शक्ति है।

3. संविधान, 1950—अनुच्छेद 32— लोकहित के मुकदमे-पत्रों को रिट याचिका के रूप में स्वीकार करना—यद्यपि कोई पत्र न्यायालय के किसी व्यक्तिगत न्यायाधीश को संबोधित किया गया हो, उसे ग्रहण कर लिया जाना चाहिए। परंतु वह निःसंदेह ऐसे व्यक्ति द्वारा या की ओर से होना चाहिए जो अभिरक्षा में हो अथवा किसी महिला या बच्चे या दुर्बल या प्रतिकूल अवस्था वाले व्यक्तियों के वर्ग की ओर से होना चाहिए।

4. संविधान, 1950—अनुच्छेद 32—उच्चतम न्यायालय अनुच्छेद 32(1) के अधीन किसी कार्यवाही के विशिष्ट प्रयोजन के लिए अर्थात् मूल अधिकार के प्रवर्तन के लिए कोई समुचित प्रक्रिया अपनाने के लिए स्वतंत्र है और अनुच्छेद 32(2) के अधीन इस न्यायालय को कोई भी निदेश, आदेश या रिट, जो कि किसी मामले में आवश्यक हो, जिसके अंतर्गत मूल अधिकार के प्रवर्तन को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक सभी आनुषंगिक या समनुषंगी शक्ति भी हैं, को जारी करने की अंतर्निहित शक्ति है।

5. संविधान, 1950—अनुच्छेद 21—सपठित अनुच्छेद 12 सृजनात्मक निर्वचन तथा उदार नवीन विचारों के माध्यम से ही अनुच्छेद 21 के अधीन मानव अधिकारों के विधिशास्त्र का हमारे देश में इस महत्वपूर्ण सीमा तक विकास हुआ है और मानव अधिकारों के आंदोलन की दिशा में यह आगे प्रगति निराधार आशंकाओं के कारण रुकने नहीं दी जाएगी। तथापि यह न्यायालय इस वर्तमान प्रक्रम पर अंतिम रूप से यह विनिश्चित करना प्रस्तावित नहीं करता कि क्या प्राइवेट निगम अनुच्छेद 12 की परिधि और विस्तार क्षेत्र के भीतर आएगा।

6. अपकृत्य विधि—सर्वथा और पूर्ण दायित्व का सिद्धांत—जहां कोई उद्यम किसी परिसंकटमय या अंतर्निहित रूप से खतरनाक क्रियाकलाप में लगा हुआ है और ऐसे

परिसंकटमय या अंतर्निहित रूप से खतरनाक क्रियाकलाप के प्रवर्तन में दुर्घटना के कारण किसी को कोई हानि पहुंचती है, जैसे कि उदाहरणस्वरूप विषैली गैस के निकालने से पहुंचती है, वहां वह उद्यम उन सभी को प्रतिकर देने के सर्वथा और पूर्ण दायित्व के अधीन होगा जो ऐसी दुर्घटना से प्रभावित होते हैं और ऐसा दायित्व किसी प्रकार के अपवाद के अध्यधीन नहीं होगा।

एक रिट याचिका श्री राम फूड एण्ड फर्टिलाइजर इण्डस्ट्रीज़ के विभिन्न यूनिटों को बंद करने का निदेश इस आधार पर अभिप्राप्त करने के लिये फाइल की गई थी कि वे समाज के लिए परिसंकटमय है और इस संबंध में एकमात्र यह विवाद्यक बचा था कि क्या उक्त श्रीराम के यूनिटों को उस स्थान से हटाने के लिए निदेश दिया जाये जहां वे इस समय स्थित हैं और उन्हें किसी ऐसे अन्य स्थान पर ले जाया जाये जहां बहुत अधिक लोग नहीं रहते हों जिससे कि लोगों के स्वास्थ्य और क्षेम को कोई वास्तविक खतरा न हो। किंतु जब यह रिट याचिका लंबित थी तभी उक्त श्रीराम के एक यूनिट में से ओलियम गैस निकलने लगी और दिल्ली लीगल एड एंड एडवाइज़ बोर्ड तथा दिल्ली बार एसोसिएशन द्वारा ऐसे व्यक्तियों को प्रतिकर देने के लिए आवेदन फाइल किए गए जिनको ओलियम गैस के निकलने के कारण अपहानि पहुंची थी। प्रतिकर के इन आवेदनों में अत्यधिक महत्वपूर्ण सांविधानिक प्रश्न उठाए गये थे और इसलिए तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने इन विवाद्यकों को विरचित करके याची तथा उसका समर्थन करने वाले अन्य व्यक्तियों को, साथ ही श्रीराम को भी अपनी-अपनी लिखित दलीलें फाइल करने के लिए कहा जिससे कि न्यायालय प्रतिकर के उन आवेदनों पर सुनवाई प्रारंभ कर सके। जब प्रतिकर के ये आवेदन सुनवाई के लिए आए तो यह महसूस किया गया कि उठाए गए विवाद्यकों में संविधान के अनुच्छेद 21 और 32 के निर्वचन से संबंधित विधि के सारवान् प्रश्न अंतर्वलित हैं अतः यह मामला पांच न्यायाधीशों के बृहत्तर न्यायपीठ को निर्दिष्ट किया जाना चाहिए। श्रीराम की ओर से यह प्रारंभिक आक्षेप किया गया कि उच्चतम न्यायालय इन सांविधानिक विवाद्यकों को विनिश्चित करने के लिए अग्रसर नहीं हो सकता क्योंकि रिट याचिका में मूलतः प्रतिकर के लिये कोई दावा नहीं किया गया है और इन विवाद्यकों के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि वे रिट याचिका से उद्भूत हुए हैं। याची अपनी रिट याचिका का संशोधन करने के लिए आवेदन कर सकता था जिससे कि वह ओलियम गैस के क्षतिग्रस्त व्यक्तियों के लिए प्रतिकर का दावा सम्मिलित कर सके किन्तु संशोधन के लिए ऐसा कोई आवेदन नहीं किया गया है और इसलिए इस रिट याचिका पर ये सांविधानिक विवाद्यक विचारार्थ उद्भूत नहीं हुए हैं।

प्रतिकर के इन आवेदनों में विचारार्थ यह प्रश्न उद्भूत होता है कि क्या अनुच्छेद 21 श्रीराम जैसे प्राइवेट निगम के विरुद्ध उपलभ्य है। श्रीराम का मालिक दिल्ली क्लाथ मिल्स लिमिटेड है। यह एक लोक कंपनी है जो कि शेयरों द्वारा परिसीमित है और जो लोकहित के महत्वपूर्ण उद्योग में लगी हुई है तथा लोगों के प्राण और स्वास्थ्य पर प्रभाव डालने की शक्ति रखती है। ऐसे प्राइवेट निगम के विरुद्ध, जो लोगों के प्राण और स्वास्थ्य को प्रभावित करने की शक्ति रखने वाले क्रियाकलाप में लगा हुआ है, अनुच्छेद 21 की उपलभ्यता के प्रश्न पर आवेदकों तथा श्रीराम की ओर से जोरदार बहस की गई। आवेदकों की ओर से काउंसेल द्वारा स्पष्टतः यह दलील दी गई कि राजकीय कार्यवाही करने के अमेरिकी सिद्धांत के

सादृश्य की सहायता लेकर तथा कृत्यकारी और नियंत्रण परीक्षा के मापदंड के अनुसार, जो कि पूर्ववर्ती विनिश्चयों में उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रतिपादित किया गया है, अनुच्छेद 21 उपलभ्य है क्योंकि उक्त श्रीराम उद्योग ऐसे उद्योग चला रहा है जो सरकार की स्वयं घोषित औद्योगिक नीतियों के अनुसार अन्ततः स्वयं सरकार द्वारा चलाया जाना आशयित है। इसके अतिरिक्त उच्चतम न्यायालय का ध्यान सरकार द्वारा श्रीराम उद्योग को उक्त उद्योग चलाने के लिए दिये गए उधार, भूमि तथा अन्य सुविधाओं की पर्याप्त सहायता की ओर भी दिलाया गया। राजकीय कार्यवाही करने के अमेरिकी सिद्धांत की सहायता लेते हुए आवेदकों की ओर से दलील दी गई कि यदि कोई प्राइवेट क्रियाकलाप राज्य द्वारा समर्थित, नियंत्रित या नियमित होता है तो वह सरकारी क्रियाकलाप में इस प्रकार घुल-मिल जाता है कि उसे राजकीय कार्यवाही कहा जा सकता है और तब उसकी शक्ति के प्रयोग पर वही सांविधानिक अवरोध होंगे जो कि राज्य की शक्ति पर होते हैं। इसके विपरीत श्रीराम उद्योग की ओर से काउंसेल ने अनुच्छेद 12 का इस प्रकार विस्तार करने के विरुद्ध सावधान किया जिससे कि प्राइवेट निगम उसकी परिधि के भीतर आ जाएं। जब एक बार किसी प्राधिकारी को अनुच्छेद 12 के अधीन "अन्य प्राधिकारी" मान लिया जाता है तो वह अपने संपूर्ण क्रियाकलाप और कृत्यों के प्रयोजनार्थ राज्य है और अमेरिका की कृत्यों को विभाजन करने की नीति, जिस द्वारा किसी प्राधिकारी के कुछ कृत्य राजकीय कार्य समझे जाते हैं और अन्य प्राइवेट कार्य समझे जाते हैं, लागू नहीं की जा सकती। अतः अनुच्छेद 12 का इस प्रकार का विस्तार करना जिससे कि उसकी परिधि के भीतर प्राइवेट निगम भी आ जाएं, मूल अधिकारों के अध्याय की स्कीम के विरुद्ध होगा। उच्चतम न्यायालय द्वारा समुचित आदेश देते हुए,

अभिनिर्धारित– प्रतिकर के लिए यह आवेदन संविधान के अनुच्छेद 21 में सन्निविष्ट प्राण के मूल अधिकार को प्रवर्तित करने के लिए है और ऐसे आवेदकों पर विचार करते समय उच्चतम न्यायालय कोई अत्यधिक तकनीकी दृष्टिकोण नहीं अपना सकता जो कि न्याय के उद्देश्यों को विफल बनाए। उच्चतम न्यायालय ने अनेक अवसरों पर इंगित किया है कि जब किसी ऐसे व्यक्ति या व्यक्ति वर्ग के किसी मूल अधिकार या अन्य विधिक अधिकार का अतिक्रमण हो जो अपनी निर्धनता या निर्योग्यता या सामाजिक या आर्थिक प्रतिकूल स्थिति के कारण न्यायालय तक न्याय के लिए नहीं पहुंच सकता है, वहां जनता में हितबद्ध किसी व्यक्ति अथवा सामाजिक कार्य करने वाला समूह ऐसे व्यक्ति विशेष या व्यक्तियों के वर्ग के मूल अथवा अन्य विधिक अधिकारों को प्रस्तुत करने के लिए कार्यवाही कर सकता है और ऐसा न केवल नियमित रूप से रिट याचिका फाइल करके किया जा सकता है अपितु न्यायालय को एक पत्र लिखकर भी किया जा सकता है। यदि उच्चतम न्यायालय किसी व्यक्ति विशेष या व्यक्तियों के वर्ग के, जो न्यायालय तक नहीं पहुंच सकते हैं, मूल अधिकार के अतिक्रमण की शिकायत करने वाले पत्र को स्वीकार करने के लिये तैयार है तो कोई कारण नहीं है कि प्रतिकर के इन आवेदनों को, जो कि ओलियम गैस के रिसने से प्रभावित व्यक्तियों के मूल अधिकारों के प्रवर्तन के लिए अनुच्छेद 21 के अधीन फाइल किये गए हैं, ग्रहण न किया जाए। किसी मूल अधिकार के प्रवर्तन संबंधी आवेदन पर विचार करते समय न्यायालय को उसके सार को देखना चाहिए, प्ररूप को नहीं। (पैरा 2)

अब यह बात पूर्णतः सुस्थिर माननी चाहिए कि अनुच्छेद 32 इस न्यायालय को मूल अधिकारों के प्रवर्तन के लिए निदेश, आदेश या रिट जारी करने की शक्ति ही केवल प्रदान नहीं करता अपितु यह इस न्यायालय पर लोगों के मूल अधिकारों की संरक्षा करने की सांविधानिक बाध्यता भी डालता है और उस प्रयोजन के लिए इस न्यायालय को वे सभी आनुषंगिक और समनुषंगी शक्तियां प्राप्त हैं जिनके अंतर्गत मूल अधिकारों के प्रवर्तन के लिए नए उपचारों को रचने की शक्ति है और नई रणनीतियों को अपनाने की शक्ति है। इस सांविधानिक बाध्यता को महसूस करते हुए ही इस न्यायालय ने इससे पहले मूल अधिकारों के प्रवर्तन को सुनिश्चित करने के प्रयोजनार्थ, विशेष रूप से निर्धन और असुविधाग्रस्त व्यक्तियों के मामले में, जो अपने आधारभूत मानव अधिकारों से वंचित हैं और जिनके लिये स्वतंत्रता और स्वाधीनता का कोई अर्थ नहीं है, नए तरीके और रणनीतियां अपनाई हैं। (पैरा 3)

उच्चतम न्यायालय के लिए किसी व्यक्तिगत न्यायाधीश को संबोधित पत्र को मात्र इस आधार पर नामंजूर करना उचित नहीं होगा कि वह न्यायालय को संबोधित नहीं है अथवा मुख्य न्यायमूर्ति और उसके साथी न्यायाधीशों को संबोधित नहीं है। यह नहीं भूलना चाहिए कि ऐसे पत्र साधारणत: निर्धन और प्रतिकूल अवस्था वाले व्यक्तियों द्वारा अथवा ऐसे समाज के सक्रिय समूहों द्वारा संबोधित किये जाएंगे जो संबोधन के उचित प्ररूप को न जानते हों, वे हो सकता है कि किसी एकमात्र विशिष्ट न्यायाधीश को, जो कि उनके राज्य से आया हो, जानते हों, और वे इसलिए पत्रों को उसे संबोधित करें। यदि न्यायालय इस बात पर जोर देगा कि पत्र न्यायालय को संबोधित किये जाएं अथवा मुख्य न्यायमूर्ति और उसके साथी न्यायाधीशों को संबोधित किए जायें तो इससे न्यायालय की अधिकारिता से बहुसंख्यक पत्र अपवर्जित हो जाएंगे और इसके परिणामस्वरूप समाज के वंचित और दुर्बल वर्ग के लोग न्यायालय तक पहुंचने से वंचित रह जाएंगे। अत: उच्चतम न्यायालय का यह मत है कि यद्यपि कोई पत्र न्यायालय के किसी व्यक्तिगत न्यायाधीश को संबोधित किया गया हो, उसे ग्रहण कर लिया जाना चाहिए। परन्तु वह नि:संदेह ऐसे व्यक्ति द्वारा या की ओर से होना चाहिये जो अभिरक्षा में हो अथवा किसी महिला या बच्चे या दुर्बल या प्रतिकूल अवस्था वाले व्यक्तियों के वर्ग की ओर से होना चाहिए। अत: न्यायालय के व्यक्तिगत न्यायाधीशों को संबोधित पत्र मात्र इस कारण नामंजूर नहीं किये जाने चाहिए क्योंकि वे संबोधन के अधिमानी प्ररूप के अनुरूप नहीं हैं। न ही न्यायालय को इस बारे में कोई कठोर रुख अपनाना चाहिये कि कोई भी पत्र तब तक ग्रहण नहीं किया जाएगा जब तक कि उसके समर्थन में शपथपत्र न हो। यदि न्यायालय पत्रों को ग्रहण करने के पूर्व शर्त के रूप में शपथपत्र होने पर जोर देगा तो पत्रोचित अधिकारिता का संपूर्ण उद्देश्य और प्रयोजन विफल हो जाएगा क्योंकि बहुत से निर्धन और प्रतिकूल स्थिति के लोग तब न्यायालय तक सरलता से पहुंचने में समर्थ नहीं होंगे और यहां तक कि समाज के सक्रिय कार्यकारी समूह न्यायालय तक पहुंचने में कठिनाई महसूस करेंगे। (पैरा 5)

उच्चतम न्यायालय अनुच्छेद 32(1) के अधीन किसी कार्यवाही के विशिष्ट प्रयोजन के लिए अर्थात् मूल अधिकार के प्रवर्तन के लिए कोई समुचित प्रक्रिया अपनाने के लिए स्वतंत्र हैं और अनुच्छेद 32(2) के अधीन उच्चतम न्यायालय को कोई भी निदेश, आदेश या रिट, जो कि किसी मामले में आवश्यक हो, जिसके अंतर्गत मूल अधिकार के प्रवर्तन को

सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक सभी आनुषंगिक या समनुषंगी शक्ति भी है, को जारी करने की अंतर्निहित शक्ति है। उच्चतम न्यायालय की शक्ति मात्र व्यादेश की प्रकृति की नहीं है अर्थात् किसी मूल अधिकार के अतिलंघन के निवारण की ही नहीं है अपितु उसका विस्तार उपचार वादी भी है। यदि उच्चतम न्यायालय ऐसे मामलों में, जहां किसी मूल अधिकार का पहले से ही अतिक्रमण हुआ है, कोई निदेश, आदेश या रिट जारी करने के लिए शक्तिहीन है तो अनुच्छेद 32 की सम्पूर्ण उपयोगिता समाप्त हो जाएगी क्योंकि तब यह स्थिति होगी कि यदि मूल अधिकार के अतिक्रमण की धमकी दी गई है तो न्यायालय ऐसे अतिक्रमण के विरुद्ध व्यादेश दे सकेगा किन्तु यदि अतिक्रमणकारी मूल अधिकार का अतिलंघन करते हुए तुरंत कार्यवाही करता है तो वह अनुच्छेद 32 के जाल से बच निकलेगा। यह काफी हद तक अनुच्छेद 32 के अधीन गारंटीकृत मूल अधिकार को क्षति पहुंचाएगा तथा इसे शक्तिहीन और निरर्थक बना देगा। अतः उच्चतम न्यायालय को यह अभिनिर्धारित करना चाहिए कि अनुच्छेद 32 ऐसे व्यक्ति की सहायता करने में शक्तिहीन नहीं है जब वह यह पाता है कि उसके मूल अधिकार का अतिक्रमण किया गया है। ऐसी दशा में वह अनुच्छेद 32 के अधीन उपचारवादी सहायता प्राप्त कर सकता है। ऐसे उपचारवादी अनुतोष देने की न्यायालय की शक्ति के अंतर्गत समुचित मामलों में प्रतिकर अधिनिर्णीत करने की शक्ति भी आती है। अतिक्रणकारी द्वारा मूल अधिकार के भंग के प्रत्येक मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 32 के अधीन याचिका में प्रतिकर नहीं दिया जाएगा। मूल अधिकार का अतिलंघन घोर और स्पष्ट होना चाहिए अर्थात् निर्विवाद और अत्यंत स्पष्ट होना चाहिए और या तो ऐसा अतिलंघन एक बड़े पैमाने पर होना चाहिए जो कि बहुसंख्यक व्यक्तियों के मूल अधिकार पर प्रभाव डालता हो या उनकी निर्धनता या निर्योग्यता या सामाजिक अथवा आर्थिक रूप से प्रतिकूल अवस्था के कारण वह अन्यायपूर्ण या अत्यधिक कठोर या दमनकारी दिखाई देना चाहिए जिससे कि ऐसे अतिलंघन से प्रभावित व्यक्ति या व्यक्तियों से यह अपेक्षा की जा सके कि वे सिविल न्यायालयों में कोई कार्यवाही आरम्भ करें या उसकी पैरवी करें। निःसंदेह साधारणतः अनुच्छेद 32 के अधीन याचिका को सिविल न्यायालय की सामान्य प्रक्रिया के माध्यम से मूल अधिकार के अतिलंघन के लिए प्रतिकर का दावा करने के अधिकार का प्रवर्तन करने के लिए प्रयोग नहीं किया जाना जाहिए। यदि यह न्यायालय उन मामलों के तथ्यों का विश्लेषण करे जिनमें इस न्यायालय द्वारा प्रतिकर अधिनिर्णीत किया गया है तो यह पता चलेगा कि ऐसे सभी मामलों में अतिलंघन का तथ्य बिल्कुल स्पष्ट और निर्विवाद था, अतिक्रमण गंभीर था तथा उसका विस्तार क्षेत्र इतना अधिक था जो कि न्यायालय की अंतरात्मा को हिला दे और ऐसे व्यक्ति के प्रति, जिसके मूल अधिकार का अतिक्रमण हुआ था, घोर अन्याय होता, यदि उससे प्रतिकर का दावा करने के लिए सिविल न्यायालय में जाने की अपेक्षा की जाती। (पैरा 7)

उच्चतम न्यायालय प्रथमदृष्टया श्रीराम उद्योग की ओर से व्यक्त इन आशंकाओं को सुआधारित मानने के लिए तैयार नहीं है कि उच्चतम न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 12 की परिधि के भीतर उन्हें शामिल कर लेने से और इस प्रकार अनुच्छेद 21 के अनुशासन में उन्हें लाने से ऐसे प्राइवेट निगम, जिनके क्रियाकलाप लोगों के प्राण और स्वास्थ्य पर प्रभाव डाल सकते हैं प्राइवेट औद्योगिक क्रियाकलाप का उत्साह बढ़ाने और उन्हें अनुज्ञप्त करने की नीति

पर गहरा प्रहार करेंगे। जब भी कभी मानव अधिकारों के क्षेत्र में कोई नई प्रगति की जाती है तब सदैव यथास्थिति चाहने वाले व्यक्तियों द्वारा यह आशंका व्यक्त की जाती है कि उससे पद्धति के सुचारु कार्यकरण के मार्ग में अनेक कठिनाइयां आएंगी और स्थिरता पर प्रभाव पड़ेगा। ऐसे व्यक्तियों द्वारा अभिव्यक्त की गई ऐसी आशंकाएं जो कि मानव अधिकारों के नए और नवीन विस्तार से प्रभावित हो सकते हैं, उच्चतम न्यायालय को मानव अधिकारों की परिधि का विस्तार करने से और उनकी पहुंच की परिधि का विस्तार करने में बाधा नहीं डालेंगे यदि अन्यथा ऐसा करना संविधान के उपबंधों की भाषा का अतिक्रमण किए बिना संभव हो। सृजनात्मक निर्वचन और उदार नवीन विचारों के माध्यम से ही मानव अधिकारों के विधिशास्त्र का हमारे देश में इस महत्वपूर्ण सीमा तक विकास हुआ है और मानव अधिकारों के आन्दोलन की दिशा में यह आगे प्रगति, यथास्थिति बनाए रखने वाले व्यक्तियों द्वारा अभिव्यक्त निराधार आशंकाओं के कारण रुकने नहीं दी जाएगी। तथापि इस वर्तमान प्रक्रम पर उच्चतम न्यायालय अंतिम रूप से यह विनिश्चित करना प्रस्तावित नहीं करता है कि क्या श्रीराम उद्योग जैसा प्राइवेट निगम अनुच्छेद 12 की परिधि और विस्तार क्षेत्र के भीतर आएगा क्योंकि इस न्यायालय के पास इस प्रश्न पर गहराई से सोचने के लिए पर्याप्त समय नहीं था। अत: इस प्रश्न को किसी पश्चात्वर्ती प्रक्रम पर उचित और सविस्तार विचार करने के लिए, यदि ऐसा करना आवश्यक हो, छोड़ा जाता है। (पैरा 30)

विधि को शीघ्र परिवर्तनशील समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विकासशील होना चाहिए और देश में होने वाले आर्थिक विकासों के अनुरूप होना चाहिए। जैसे-जैसे नई स्थितियां पैदा होती हैं वैसे-वैसे ऐसी नई स्थितियों का मुकाबला करने के लिए विधि का विकास होना चाहिए। विधि निर्जीव नहीं बनी रह सकती। उच्चतम न्यायालय को नए सिद्धांतों का विकास करना होता है और ऐसे-ऐसे नए मापदंड अधिकथित करने होते हैं जो ऐसी नई समस्याओं को पर्याप्ततः सुलझा सकें जो एक उच्च औद्योगिक अर्थव्यवस्था में पैदा होती हैं। उच्चतम न्यायालय का यह मत है कि कोई ऐसा उद्यम जो कि परिसंकटमय या अंतर्निहित रूप से खतरनाक उद्योग में लगा है, जो कि कारखाने में काम करने वाले और परिवर्ती क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के स्वास्थ्य और क्षेम के लिए एक बहुत बड़ा खतरा है, समुदाय के प्रति पूर्ण और अप्रत्यायोजनीय कर्त्तव्य यह सुनिश्चित करने के लिए रखते हैं कि उस क्रियाकलाप के, जो कि उस द्वारा किया जाता है, परिसंकटमय या अंतर्निहित रूप से खतरनाक प्रकृति के होने के कारण किसी व्यक्ति को हानि न पहुंचे। ऐसे उद्यम के बारे में यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि वह यह व्यवस्था करने की बाध्यता के अधीन है कि परिसंकटमय या अंतर्निहित रूप से खतरनाक क्रियाकलाप, जिसमें वह लगा हुआ है, क्षेम के उच्चतम मानकों के अनुसार संचालित किया जाएगा और यदि ऐसे क्रियाकलाप के कारण कोई नुकसान पहुंचता है तो उस उद्यम को ऐसी हानि के प्रतिकर के लिए पूर्ण रूप से दायित्वाधीन समझा जाना चाहिए और उद्यम उत्तर में यह नहीं कह सकता कि उसने सभी युक्तियुक्त सावधानी बरती थी और हानि उसकी ओर से की गई किसी उपेक्षा के बिना हुई है। चूंकि परिसंकटमय और अंतर्निहित रूप से खतरनाक क्रियाकलाप के कारण, जो कि उद्यम द्वारा किया जा रहा था, जिन व्यक्तियों को हानि पहुंची है, वे उस वस्तु की परिसंकटमय निर्मिति या किसी अन्य संबंधित तत्व की, जिसने हानि पहुंचाई है, संक्रिया को अलग करने की स्थिति में नहीं होंगे, अत: उन्हें परिसंकटमय या अंतर्निहित रूप से खतरनाक क्रियाकलाप को करने के

सामाजिक खर्चे के तौर पर ऐसी हानि कारित करने के लिए पूर्ण रूप से दायित्वाधीन अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए। यदि उद्यम अपने लाभ के लिए परिसंकटमय या अंतर्निहित रूप से खतरनाक क्रियाकलाप करने के लिए अनुज्ञात किया जाता है तो विधि की ओर से यह उपधारणा की जानी चाहिए कि इस प्रकार की अनुज्ञा इस शर्त के अधीन है कि वह उद्यम ऐसे परिसंकटमय या अंतर्निहित रूप से खतरनाक क्रियाकलाप के कारण होने वाली दुर्घटना के खर्चों को भी अपने प्रकीर्ण खर्चों में समुचित मद के रूप में आमेलित करेगा। अत: उच्चतम न्यायालय यह अभिनिर्धारित करता है कि जहां कोई उद्यम किसी परिसंकटमय या अंतर्निहित रूप से खतरनाक क्रियाकलाप में लगा हुआ है और ऐसे परिसंकटमय या अंतर्निहित रूप से खतरनाक क्रियाकलाप के प्रवर्तन में दुर्घटना के कारण किसी को कोई हानि पहुंचती है, जैसे कि उदाहरण स्वरूप विषैली गैस के निकलने से पहुंचती है, वहां उद्यम उन सभी को प्रतिकर देने के सर्वथा और पूर्ण दायित्व के अधीन होगा जो ऐसी दुर्घटना से प्रभावित होते हैं और ऐसा दायित्व उन अपवादों में से किसी के अध्यधीन नहीं होगा जो कि रेलेण्ड्स बनाम फ्लैचर में अधिकथित नियम के अधीन सर्वथा दायित्व के अपकृत्यात्मक सिद्धांत के संबंध में हैं। (पैरा 31)

प्रतिकर की मात्रा उस उद्यम की विशालता और सामर्थ्य के अनुरूप होनी चाहिए क्योंकि इस प्रकार के प्रतिकर का प्रभाव भयोपरत होना चाहिए। जितना बड़ा और समृद्ध उद्यम होगा उसके द्वारा उतनी ही अधिक प्रतिकर की रकम उस हानि के लिए दी जानी चाहिए जो कि उसके द्वारा परिसंकटमय या अंतर्निहित रूप से खतरनाक क्रियाकलाप करने के कारण दुर्घटनावश हुई है। (पैरा 32)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1984]	[1984] 3 उम० नि० प० 1984=1984(2) एस० सी० आर० 67 : **बंधुआ मुक्ति मोर्चा** बनाम **भारत संघ और अन्य;**	3, 4, 5, 6, 7
[1983]	[1983] 4 उम० नि० प० 387=ए० आई० आर० 1983 एस० सी० 1086 : **रूडुल शाह** बनाम **बिहार राज्य;**	7
[1983]	[1983] 2 उम० नि० प० 135=1983 (1) एस० सी० आर० 456 : **पीपल्स यूनियन फार डैमोक्रेटिक राईट्स और अन्य** बनाम **भारत संघ;**	4
[1982]	[1982] 4 उम० नि० प० 1=1981 (सप्ली) एस०सी० सी० 87 : **एस० पी० गुप्ता** बनाम **भारत संघ;**	4

[1982] [1982] 2 उम० नि० प० 1141=1982 (1) एस० सी० आर० 438 :
एअर इंडिया बनाम नरगेश मिर्जा; 29

[1981] [1981] 4 उम० नि० प० 419=1981 (2) एस० सी० आर० 79 :
अजय हांसिया बनाम खालिद मुजीब; 17

[1981] [1981] 4 उम० नि० प० 462=1981 (2) एस० सी० आर० 1 :
सोम प्रकाश बनाम भारत संघ; 18

[1981] [1981] 3 एस० सी० आर० 374 :
रास बिहारी पांडे बनाम राज्य; 28

[1980] [1980] 3 एस० सी० आर० 1338 :
कस्तूरी लाल रेड्डी बनाम जम्मू कश्मीर राज्य; 28

[1980] [1980] 2 उम० नि० प० 961=1979 (3) एस० सी० आर० 1014 :
रामन्ना शेट्टी बनाम इन्टरनेशनल एअरपोर्ट अथारिटी; 12, 13, 15, 17, 28, 29, 30

[1975] [1975] 3 उम० नि० प० 30=1975 (1) एस० सी० आर० 421 :
सुखदेव बनाम भगत राम; 12

[1975] [1975] 2 एस० सी० आर० 674 :
यूरेशियन इक्विपमेंट एण्ड कैमिकल्स लि० बनाम पश्चिम बंगाल राज्य; 28

[1967] [1967] 3 एस० सी० आर० 377 :
राजस्थान इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड बनाम मोहन लाल; 11

50 लायर्स एडीशन (2 डी०) 343 :
जनरल इलेक्ट्रिक कम्पनी मारथा बनाम गिल्बर्ट; 29

42 लायर्स एडीशन (2 डी०) 477 :
जैकसन बनाम मेट्रोपालिटन ऐडिसन कम्पनी; और 29

एल० आर० (1868) 3 इंग्लिश एण्ड आइरिश अपील केसेज (हाउस ऑफ लार्ड्स):
रैलेण्ड्स बनाम फ्लैचर; 31

सिविल आरंभिक अधिकारिता : 1985 की रिट याचिका (सिविल) सं० 12739.

याची की ओर से	स्वयं याची
प्रत्यर्थियों की ओर से	सर्वश्री बी० दत्ता, अपर सालिसिटर जनरल, ए० बी० दीवान, एफ० एस० नारीमन, बी० आर० एल० अयंगर और हरदेव सिंह, वरिष्ठ अधिवक्ता सर्वश्री हेमन्त शर्मा, सी० वी० एस० राव, आर० डी० अग्रवाल, सुश्री एस० रेलन, सर्वश्री आर० एस० सोढी, एस० सुकुमारन, रवीन्द्र नारायण, डी० एन० मिश्रा, आदित्य नारायण, सुश्री लीरा गोस्वामी, सर्वश्री एम० एस० कच्छवाहा, मोहन, रवीन्द्र बाना, के०सी० दुआ, श्रीमती के० कुमारमंगलम, सर्वश्री ओ० सी० जैन, के० आर० आर० पिल्लई, अधिवक्ता
मध्यक्षेपी की ओर से	श्री राजू रामचन्द्रन
सिटीजन एक्शन कमेटी की ओर से	श्री सोली जे० सोराबजी

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्या० पी० एन० भगवती ने दिया।

मु० न्या० भगवती—यह रिट याचिका संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन तीन न्यायाधीशों के न्यायपीठ द्वारा निर्देश करने पर हमारे समक्ष आई है। निर्देश इसलिए किया गया था क्योंकि कुछ अत्यधिक महत्वपूर्ण और कुछ सांविधानिक महत्व के प्रश्न बहस के दौरान रिट याचिका की मूल सुनवाई करते समय उठाए गए थे। इस रिट याचिका से संबंधित तथ्य और उसके पश्चात्वर्ती घटनाएं 17 फरवरी, 1986 के तीन न्यायाधीशों के न्यायपीठ द्वारा दिए गए निर्णय में कुछ विस्तार से उपवर्णित की गई हैं और इसलिए उन्हें फिर से दोहराना आवश्यक नहीं है। इतना कह देना पर्याप्त है कि तीन न्यायाधीशों के न्यायपीठ ने श्रीराम फूड एण्ड फर्टिलाइजर इण्डस्ट्रीज़ (जिसे इसमें इसके पश्चात् श्रीराम के रूप में निर्दिष्ट किया गया है) को अपना शक्तिचालित संयंत्र और कॉस्टिक क्लोरिन का विनिर्माण करने वाला संयंत्र, जिसमें साबुन ग्लिसरीन और तकनीकी हार्ड आयल जैसे उप-उत्पाद और रिकवरी संयंत्र भी आते हैं, पुन: शुरु करने की अनुज्ञा निर्णय में उपवर्णित शर्तों के अध्यधीन रहते हुए दी थी। सामान्य रूप से इस रिट याचिका में उठा विवाद उससे समाप्त हो जाता। रिट याचिका श्रीराम के विभिन्न यूनिटों को बन्द करने का निदेश इस आधार पर अभिप्राप्त करने के लिए फाइल की गई थी कि वे समाज के लिए परिसंकटमय हैं और एक मात्र विवाद यह बचता कि क्या श्रीराम के यूनिटों को उस स्थान से हटाने के लिए निदेश दिया जाए जहां वे इस समय स्थित हैं और उन्हें किसी ऐसे अन्य स्थान पर ले जाया जाए जहां बहुत अधिक लोग नहीं रहते हों जिससे कि लोगों के स्वास्थ्य और क्षेम को कोई वास्तविक खतरा न हो। किंतु जब यह

रिट याचिका लंबित थी, 4 और 6 सितंबर, 1985 को श्रीराम के एक यूनिट में से ओलियम गैस निकल गई और दिल्ली लीगल एड एण्ड एडवाइज़ बोर्ड तथा दिल्ली बार एसोसिएशन द्वारा आवेदन ऐसे व्यक्तियों को प्रतिकर देने के लिए फाइल किए गए जिनको ओलियम गैस निकलने के कारण अपहानि पहुंची थी। प्रतिकर के इन आवेदनों में अत्यधिक महत्वपूर्ण सांविधानिक प्रश्न उठाए गए थे और इसलिए तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने इन विवाद्यकों को विरचित करके याची तथा उसका समर्थन करने वाले अन्य व्यक्तियों को, साथ ही श्रीराम को भी अपनी-अपनी लिखित दलीलें फाइल करने के लिए कहा जिससे कि न्यायालय प्रतिकर के उन आवेदनों पर सुनवाई प्रारम्भ कर सके। जब प्रतिकर के ये आवेदन सुनवाई के लिए आए तो यह महसूस किया गया कि चूंकि उठाए गए विवाद्यकों में संविधान के अनुच्छेद 21 और 32 के निर्वचन से संबंधित विधि के सारवान् प्रश्न अन्तर्वलित हैं अतः यह मामला पांच न्यायाधीशों के बृहत्तर न्यायपीठ को निर्दिष्ट किया जाना चाहिए और इस प्रकार यह मामला हमारे समक्ष आया है।

2. श्रीराम की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री दीवान ने एक प्रारंभिक आक्षेप यह किया है कि यह न्यायालय इन सांविधानिक विवाद्यकों को विनिश्चित करने के लिए अग्रसर नहीं हो सकती क्योंकि रिट याचिका में मूलतः प्रतिकर के लिए कोई दावा नहीं किया गया है और इन विवाद्यकों के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि वे रिट याचिका से उद्भूत हुए हैं। श्री दीवान ने यह माना कि ओलियम गैस रिट याचिका के फाइल करने के पश्चात् निकली थी किन्तु उन्होंने यह दलील दी कि याची अपनी रिट याचिका का संशोधन करने के लिए आवेदन कर सकता था जिससे कि वह ओलियम गैस के क्षतिग्रस्त व्यक्तियों के लिए प्रतिकर का दावा शामिल कर सके किंतु संशोधन के लिए ऐसा कोई आवेदन नहीं किया गया और इसलिए इस रिट याचिका पर, जैसी कि वह है, ये सांविधानिक विवाद्यक विचारार्थ उद्भूत नहीं हुए हैं। हम नहीं समझते कि यह प्रारंभिक आक्षेप, जो श्री दीवान ने उठाया है, चलने योग्य है। यह निःसंदेह सच है कि याची रिट याचिका के संशोधन के लिए आवेदन कर सकता था जिससे कि प्रतिकर का दावा शामिल किया जा सके किंतु मात्र इस कारण कि उसने ऐसा नहीं किया, दिल्ली लीगल एड एण्ड एडवाइज़ बोर्ड तथा दिल्ली बार एसोसिएशन द्वारा प्रतिकर के लिए फाइल किए गए आवेदनों को नामंजूर नहीं किया जा सकता। प्रतिकर के लिए ये आवेदन संविधान के अनुच्छेद 21 में सन्निविष्ट प्राण के मूल अधिकार को प्रवर्तित करने के लिए हैं और ऐसे आवेदनों पर विचार करते समय हम कोई अत्यधिक तकनीकी दृष्टिकोण नहीं अपना सकते जो कि न्याय के उद्देश्यों को विफल बनाए। इस न्यायालय ने अनेक अवसरों पर इंगित किया है कि जब किसी ऐसे व्यक्ति या व्यक्ति वर्ग के किसी मूल अधिकार या अन्य विधिक अधिकार का अतिक्रमण हो जो अपनी निर्धनता या निर्योग्यता या सामाजिक या आर्थिक प्रतिकूल स्थिति के कारण न्यायालय तक न्याय के लिए नहीं पहुंच सकता है, वहां जनता में हितबद्ध किसी व्यक्ति अथवा सामाजिक कार्य करने वाला समूह ऐसे व्यक्ति विशेष या व्यक्तियों के वर्ग के मूल अथवा अन्य विधिक अधिकारों को प्रस्तुत करने के लिए कार्यवाही कर सकता है और ऐसा न केवल नियमित रूप से रिट याचिका फाइल करके किया जा सकता है अपितु न्यायालय को एक पत्र लिखकर भी किया जा सकता है। यदि यह न्यायालय किसी व्यक्ति विशेष या व्यक्तियों के वर्ग के जो न्यायालय तक नहीं पहुंच सकते हैं, मूल अधिकार के अतिक्रमण की शिकायत करने वाले पत्र को स्वीकार करने के लिए तैयार है

तो कोई कारण नहीं है कि प्रतिकर के इन आवेदनों को, जो कि ओलियम गैस के रिसने से प्रभावित व्यक्तियों के मूल अधिकारों के प्रवर्तन के लिए अनुच्छेद 21 के अधीन फाइल किए गए हैं, ग्रहण न किया जाए। किसी मूल अधिकार के प्रवर्तन संबंधी आवेदन पर विचार करते समय न्यायालय को उसके सार को देखना चाहिए और प्ररूप को नहीं। अत: हम श्री दीवान द्वारा उठाए गए प्रारंभिक आक्षेप को मंजूर नहीं कर सकते।

3. प्रथम प्रश्न जिस पर विचार किया जाना अपेक्षित है इस बारे में है कि अनुच्छेद 32 के अधीन इस न्यायालय की अधिकारिता की परिधि और विस्तार-क्षेत्र क्या है, क्योंकि दिल्ली लीगल एड एण्ड एडवाइज़ बोर्ड तथा दिल्ली बार एसोसिएशन द्वारा प्रतिकर के लिए फाइल किए गए आवेदन इसी अनुच्छेद के अधीन चलाए जाने ईप्सित हैं। हमें **बन्धुआ मुक्ति मोर्चा** बनाम **भारत संघ और अन्य**[1] में अनुच्छेद 32 की परिधि और विस्तार क्षेत्र पर विचार करने का अवसर मिला था और हम पूर्णत: उसका अनुमोदन करते हैं जो कि हममें से एक अर्थात् न्यायमूर्ति भगवती ने, जैसे कि वे तब थे, उस मामले में इस अनुच्छेद की वास्तविक परिधि और विस्तार क्षेत्र के बारे में अपने निर्णय में जो कुछ कहा है। अब यह बात पूर्णत: सुस्थिर माननी चाहिए कि अनुच्छेद 32 इस न्यायालय को मूल अधिकारों के प्रवर्तन के लिए निदेश, आदेश या रिट जारी करने की शक्ति ही केवल प्रदान नहीं करता अपितु यह इस न्यायालय पर लोगों के मूल अधिकारों की संरक्षा करने की सांविधानिक बाध्यता भी डालता है और उस प्रयोजन के लिए इस न्यायालय को वे सभी आनुषंगिक और समनुषंगी शक्तियां प्राप्त हैं जिनके अंतर्गत मूल अधिकारों के प्रवर्तन के लिए नए उपचारों को रचने की शक्ति है और नई रणनीतियों को अपनाने की शक्ति है। इस सांविधानिक बाध्यता को महसूस करते हुए ही इस न्यायालय ने इससे पहले मूल अधिकारों के प्रवर्तन को सुनिश्चित करने के प्रयोजनार्थ, विशेष रूप से निर्धन और असुविधाग्रस्त व्यक्तियों के मामले में, जो अपने आधारभूत मानव अधिकारों से वंचित हैं और जिनके लिए स्वतन्त्रता और स्वाधीनता का कोई अर्थ नहीं है, नए तरीके और रणनीतियां अपनाई हैं।

4. इस प्रकार **एस० पी० गुप्ता** बनाम **भारत संघ**[2] में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया था कि "जब कोई विधिक दोष या विधिक क्षति किसी व्यक्ति को या व्यक्तियों के अवधारणीय वर्ग को किसी सांविधानिक या विधिक अधिकार के अतिक्रमण के कारण कारित की जाती है अथवा किसी सांविधानिक या विधिक उपबंधों के उल्लंघन में अथवा विधि के प्राधिकार के बिना कोई भार अधिरोपित किया जाता है अथवा ऐसे किसी विधिक दोष या विधिक क्षति या अवैध भार की धमकी दी जाती है और ऐसा कोई व्यक्ति या व्यक्तियों का अवधारणीय वर्ग निर्धनता या निर्योग्यता या सामाजिक अथवा आर्थिक प्रतिकूल अवस्था के कारण अनुतोष के लिए न्यायालय तक पहुंचने में असमर्थ है वहां जनता का कोई सदस्य या समाज का सक्रिय समूह ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों के ऐसे अवधारणीय वर्ग के साथ किए गए विधिक दोष या क्षति हेतु न्यायिक अनुतोष प्राप्त करने के लिए अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय में और ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों के वर्ग के किसी मूल अधिकार के भंग की दशा में

---

[1] [1984] 3 उम० नि० प० 23=1984 (2) एस० सी० आर० 67.

[2] [1982] 4 उम० नि० प० 1=1981 (सप्ली०) एस० सी० सी० 87.

अनुच्छेद 32 के अधीन इस न्यायालय में समुचित निदेश, आदेश या रिट के लिए आवेदन ला सकता है। इस न्यायालय ने **एस० पी० गुप्ता**[1] के मामले में तथा **पीपल्स यूनियन फार डैमोक्रेटिक राईट्स और अन्य** बनाम **भारत संघ**[2] और **बंधुआ मुक्ति मोर्चा**[3] वाले मामले में भी अभिनिर्धारित किया है कि प्रक्रिया न्याय तक पहुंचने का मात्र एक मार्ग होने के कारण वह भारतीय मानवता के कमजोर वर्ग के लिए न्याय तक जाने में कोई बाधा नहीं होनी चाहिए और इसलिए जहां तक निर्धन और प्रतिकूल स्थिति वाले व्यक्तियों का संबंध है जो कि एक शोषणीय अस्तित्व मात्र अपने पसीने और मेहनत के बल पर जी रहे हैं और जो सामाजिक शोषण का शिकार हैं तथा न्याय तक जिनकी पहुंच नहीं है उनके लिए यह न्यायालय एक नियमित रिट याचिका पर जोर नहीं देगा और जनता में हितबद्ध किसी व्यक्ति द्वारा अथवा समाज के किसी सक्रिय समूह द्वारा जो कि जनहित में कार्य कर रहा हो, सम्बोधित कोई एक पत्र भी इस न्यायालय की अधिकारिता को जागृत करने लिए पर्याप्त होगा। हम सुने जाने के अधिकार के इस रूप में विस्तार की बाबत, जो अब पत्रोचित अधिकारिता के रूप में ज्ञात है, विधि के इस कथन का पूर्णत: समर्थन करते हैं।

5. हम इस प्रक्रम पर यह इंगित कर दें कि **बंधुआ मुक्ति मोर्चा**[3] वाले मामले में, हममें से कुछ ने यह आशंका प्रकट करते हुए कि व्यक्तिगत न्यायाधीशों को सम्बोधित पत्र इस न्यायालय को तुच्छ मामलों में फंसा देंगे और इसलिए संभवत: यह मत अपनाया जा सकता है कि ऐसे पत्र संपूर्ण न्यायालय की अधिकारिता को संबोधित नहीं करते हैं, यह मत प्रकट किया गया था कि ऐसे पत्र न्यायालय के व्यक्तिगत न्यायाधीशों को संबोधित नहीं किए जाने चाहिए अपितु न्यायालय को संबोधित किए जाने चाहिए अथवा मुख्य न्यायमूर्ति और उसके साथी न्यायाधीशों को संबोधित किए जाने चाहिए। हम नहीं समझते कि न्यायालय के लिए किसी व्यक्तिगत न्यायाधीशों को संबोधित पत्र को मात्र इस आधार पर नामंजूर करना उचित होगा कि वह न्यायालय को संबोधित नहीं है अथवा मुख्य न्यायमूर्ति और उसके साथी न्यायाधीशों को संबोधित नहीं है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि ऐसे पत्र साधारणत: निर्धन और प्रतिकूल अवस्था वाले व्यक्तियों द्वारा अथवा ऐसे समाज के सक्रिय समूहों द्वारा संबोधित किए जाएंगे जो संबोधन के उचित प्ररूप को न जानते हों, वे हो सकता है कि किसी एक मात्र विशिष्ट न्यायाधीश को, जो कि उनके राज्य से आया हो, जानते हों, और वे इसलिए पत्रों को उसे संबोधित करें। यदि न्यायालय इस बात पर जोर देगा कि पत्र न्यायालय को संबोधित किए जाएं अथवा मुख्य न्यायमूर्ति और उसके साथी न्यायाधीशों को संबोधित किए जाएं तो इससे न्यायालय की अधिकारिता से बहुसंख्यक पत्र अपवर्जित हो जाएंगे और इसके परिणामस्वरूप समाज के वंचित और दुर्बल वर्ग के लोग न्यायालय तक पहुंचने से वंचित रह जाएंगे। अत: हमारा मह मत है कि यद्यपि कोई पत्र न्यायालय के किसी व्यक्तिगत न्यायाधीश को संबोधित किया गया हो, उसे ग्रहण कर लिया जाना चाहिए। परन्तु वह नि:संदेह ऐसे व्यक्ति द्वारा या की ओर से होना चाहिए जो अभिरक्षा में हो अथवा किसी महिला या बच्चे या दुर्बल या प्रतिकूल अवस्था वाले व्यक्तियों के वर्ग की ओर से होना चाहिए। हम यह इंगित कर दें कि

---

1 [1982] 4 उम० नि० प० 1=1981 (सप्ली०) एस० सी० आर० 87.

2 [1983] 2 उम० नि० प० 135=1983 (1) एस० सी० आर० 456.

3 [1984] 3 उम० नि० प० 23=1984 (2) एस० सी० आर० 67.

न्यायालय के व्यक्तिगत न्यायाधीशों को संबोधित पत्रों को ग्रहण करने में अब कोई कठिनाई नहीं है क्योंकि इस न्यायालय के पास एक लोकहित के मुकद्दमों का सैल है जहां न्यायालय अथवा व्यक्तिगत न्यायाधीशों को संबोधित सभी पत्र भेजे जाते हैं और इस सैल से संलग्न कर्मचारिवृन्द उन पत्रों की परीक्षा करते हैं और इस सैल से संलग्न कर्मचारिवृन्द के सदस्यों द्वारा संवीक्षा करने के पश्चात् ही ये पत्र मुख्य न्यायमूर्ति के समक्ष रखे जाते हैं और उसके निदेश पर वे न्यायालय के समक्ष सूचीबद्ध किए जाते हैं। अतः हमें यह अभिनिर्धारित करना चाहिए कि न्यायालय के व्यक्तिगत न्यायाधीशों को संबोधित पत्र मात्र इस कारण नामंजूर नहीं किए जाने चाहिए क्योंकि वे संबोधन के अधिमानी प्ररूप के अनुरूप नहीं हैं। न ही न्यायालय को इस बारे में कठोर रुख अपनाना चाहिए कि कोई भी पत्र तब तक ग्रहण नहीं किया जाएगा जब तक कि उसके समर्थन में शपथपत्र न हो। यदि न्यायालय पत्रों को ग्रहण करने के पूर्व शर्त के रूप में शपथपत्र के होने पर जोर देगा तो पत्रोचित अधिकारिता का संपूर्ण उद्देश्य और प्रयोजन विफल हो जाएगा क्योंकि बहुत से निर्धन और प्रतिकूल स्थिति के लोग तब न्यायालय तक सरलता से पहुंचने में समर्थ नहीं होंगे और यहां तक कि समाज के सक्रिय कार्यकारी समूह न्यायालय तक पहुंचने में कठिनाई महसूस करेंगे। हम यह इंगित कर दें कि न्यायालय अभी तक शपथ-पत्र के बिना पत्रों को ग्रहण कर रहा था और केवल कुछ ही आपवादिक मामलों में ऐसा पाया गया है कि पत्रों में दिए गए अभिकथन मिथ्या हैं। किंतु ऐसा उन मामलों में भी हो सकता है जहां न्यायालय की अधिकारिता का प्रयोग नियमित रूप में किया गया हो।

6. जहां तक कि इस प्रकार के मुकदमों में, जिन्हें सुविधा की दृष्टि से सामाजिक कार्य के मुकदमे कहा जा सकता है और इस प्रयोजन के लिए विवाद्यक से संबंधित सुसंगत सामग्री इकट्ठी करने तथा कमीशन नियुक्त करने का अनुच्छेद 32 के अधीन इस न्यायालय की शक्ति का संबंध है, हम **बंधुआ मुक्ति मोर्चा**[1] के मामले में दिए गए निर्णय में, हमारे में से एक, न्यायमूर्ति भगवती, जैसे कि वे तब थे, द्वारा जो कुछ कहा गया है, उसका समर्थन करते हैं। हमें वह सब कुछ दोहराना आवश्यक नहीं है जो कि उस निर्णय में कहा गया है। उसे हमारा पूर्ण अनुमोदन प्राप्त है।

7. हमारा यह भी मत है कि यह न्यायालय अनुच्छेद 32 (1) के अधीन किसी कार्यवाही के विशिष्ट प्रयोजन के लिए अर्थात् मूल अधिकार के प्रवर्तन के लिए कोई समुचित प्रक्रिया अपनाने के लिए स्वतंत्र है और अनुच्छेद 32 (2) के अधीन इस न्यायालय को कोई भी निदेश, आदेश या रिट, जो कि किसी मामले में आवश्यक हो, जिसके अंतर्गत मूल अधिकार के प्रवर्तन को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक सभी आनुषंगिक शक्ति भी है, को जारी करने की अंतर्निहित शक्ति है। न्यायालय की शक्ति मात्र व्यादेश की प्रकृति की नहीं है अर्थात् किसी मूल अधिकार के अतिलंघन के निवारण की ही नहीं अपितु उसका विस्तार उपचारवादी भी है और वह **बंधुआ मुक्ति मोर्चा**[1] के मामले के अनुसार मूल अधिकार के पहले से हुए किसी भंग के विरुद्ध अनुतोष देने की भी है। यदि यह न्यायालय ऐसे मामलों में, जहां किसी मूल

---

[1] [1984] 3 उम० नि० प० 23=1984 (2) एस० सी० आर० 67.

अधिकार का पहले से ही अतिक्रमण हुआ है, कोई निदेश, आदेश या रिट जारी करने के लिए शक्तिहीन है तो अनुच्छेद 32 की संपूर्ण उपयोगिता समाप्त हो जाएगी क्योंकि तब यह स्थिति होगी कि यदि मूल अधिकार के अतिक्रमण की धमकी दी गई है तो न्यायालय ऐसे अतिक्रमण के विरुद्ध व्यादेश दे सकेगा किंतु यदि अतिक्रमणकारी मूल अधिकार का अतिलंघन करते हुए तुरंत कार्यवाही करता है तो वह अनुच्छेद 32 के जाल से बच निकलेगा। यह काफी हद तक अनुच्छेद 32 के अधीन गारंटीकृत मूल अधिकार को क्षति पहुंचाएगा तथा इसे शक्तिहीन और निरर्थक बना देगा। अतः हमें यह अभिनिर्धारित करना चाहिए कि अनुच्छेद 32 ऐसे व्यक्ति की सहायता करने में शक्तिहीन नहीं है जब वह यह पाता है कि उसके मूल अधिकार का अतिक्रमण किया गया है। ऐसी दशा में वह अनुच्छेद 32 के अधीन उपचारवादी सहायता प्राप्त कर सकता है। ऐसे उपचारवादी अनुतोष देने की न्यायालय की शक्ति के अंतर्गत समुचित मामलों में प्रतिकर अधिनिर्णीत करने की शक्ति भी आती है। हम जानबूझकर "समुचित मामलों में" शब्दों का प्रयोग कर रहे हैं क्योंकि हमें यह बात स्पष्ट कर देनी चाहिए कि अतिक्रमणकारी द्वारा मूल अधिकार के भंग के प्रत्येक मामले में इस न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 32 के अधीन याचिका में प्रतिकर नहीं दिया जाएगा। मूल अधिकार का अतिलंघन घोर और स्पष्ट होना चाहिए अर्थात् निर्विवाद और अत्यंत स्पष्ट होना चाहिए, और या तो ऐसा अतिलंघन एक बड़े पैमाने पर होना चाहिए, जो कि बहुसंख्यक व्यक्तियों के मूल अधिकार पर प्रभाव डालता हो, या उनकी निर्धनता या निर्योग्यता या सामाजिक अथवा आर्थिक रूप से प्रतिकूल अवस्था के कारण वह अन्यायपूर्ण या अत्यधिक कठोर या दमनकारी दिखाई देना चाहिए जिससे कि ऐसे अतिलंघन से प्रभावित व्यक्ति या व्यक्तियों से यह अपेक्षा की जा सके कि वे सिविल न्यायालयों में कोई कार्यवाही आरम्भ करें या उसकी पैरवी करें। निःसंदेह साधारणतः अनुच्छेद 32 के अधीन याचिका को, सिविल न्यायालय की सामान्य प्रक्रिया के माध्यम से मूल अधिकार के अतिलंघन के लिए, प्रतिकर का दावा करने के अधिकार का प्रवर्तन करने के लिए प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। हमारे द्वारा केवल ऊपर उपवर्णित आपवादिक प्रकृति के मामलों में ही अनुच्छेद 32 के अधीन याचिका में प्रतिकर अधिनिर्णीत किया जा सकता है। इसी सिद्धांत के आधार पर इस न्यायालय ने **रुडुल शाह बनाम बिहार राज्य**[1] में प्रतिकर अधिनिर्णीत किया था। इसी प्रकार ही इस न्यायालय ने भीम सिंह को प्रतिकर अधिनिर्णीत किया था जिसकी दैहिक स्वतंत्रता के मूल अधिकार का जम्मू कश्मीर राज्य द्वारा घोर अतिक्रमण हुआ था। यदि हम उन मामलों के तथ्यों का विश्लेषण करें जिनमें इस न्यायालय द्वारा प्रतिकर अधिनिर्णीत किया गया है तो हमें पता चलेगा कि ऐसे सभी मामलों में अतिलंघन का तथ्य बिल्कुल स्पष्ट और निर्विवाद था, अतिक्रमण गंभीर था तथा उसका विस्तार-क्षेत्र इतना अधिक था जो कि न्यायालय की अंतर्तात्मा को हिला दे और ऐसे व्यक्ति के प्रति, जिसके मूल अधिकार का अतिक्रमण हुआ था, घोर अन्याय होता, यदि उससे प्रतिकर का दावा करने के लिए सिविल न्यायालय में जाने की अपेक्षा की जाती।

8. प्रतिकर के इन आवेदनों में विचारार्थ दूसरा प्रश्न यह उद्भूत होता है कि क्या अनुच्छेद 21 श्रीराम के विरुद्ध उपलभ्य है। श्रीराम का मालिक दिल्ली क्लाथ मिल्स लिमिटेड

---

[1] [1983] 4 उम० नि० प० 387=ए० आई० आर० 1983 एस० सी० 1086.

है । यह एक लोक कंपनी है जो कि शेयरों द्वारा परिसीमित है और जो लोकहित के महत्वपूर्ण उद्योग में लगी हुई है और जो कि लोगों के प्राण और स्वास्थ्य पर प्रभाव डालने की शक्ति रखती है । ऐसे प्राइवेट निगम के विरुद्ध, जो लोगों के प्राण और स्वास्थ्य को प्रभावित करने की शक्ति रखने वाले क्रियाकलाप में लगा हुआ है, अनुच्छेद 21 की उपलभ्यता के प्रश्न पर आवेदकों तथा श्रीराम की ओर से काउंसेल द्वारा जोरदार बहस की गई । आवेदकों की ओर से काउंसेल द्वारा स्पष्टतः यह दलील दी गई है कि राजकीय कार्यवाही करने के अमेरिकी सिद्धांत के सादृश्य की सहायता लेकर तथा कृत्यकारी और नियंत्रण परीक्षा के मापदंड के अनुसार, जो कि पूर्ववर्ती विनिश्चयों में इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित किया गया है, अनुच्छेद 21 उपलभ्य है क्योंकि श्रीराम ऐसा उद्योग चला रहा है जो कि सरकार की स्वयं घोषित औद्योगिक नीतियों के अनुसार अन्ततः स्वयं सरकार द्वारा चलाया जाना आशयित है, किंतु सरकार द्वारा तुरन्त उस उद्योग को हाथ में लेने की बजाए श्रीराम को, सरकार के सक्रिय नियंत्रण और विनियमन के अधीन, उसे चलाने की अनुज्ञा दी गई है । क्योंकि सरकार अन्ततः इस उद्योग को स्वयं चलाना चाहती है और इस उद्योग को चलाने का ढंग लोकहित पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाल सकता है, अतः सरकार का नियंत्रण उद्योग के कार्यकरण के उस पहलू का विनियमन करने के साथ जुड़ा हुआ है जो लोकहित को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित कर सकता है। आवेदकों की ओर से काउंसेल द्वारा औद्योगिक विकास और विनियमन अधिनियम, 1951 के अधीन उपबंधित विनियमनकारी तंत्र पर जोर दिया गया जहां उद्योगों को, यदि वे लोकहित को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करते हैं, अनुसूची में शामिल किया गया है । ऐसे विनियमनकारी उपाय बाम्बे म्युनिसिपल कारपोरेशन ऐक्ट, एयर एण्ड वाटर पाल्युशन कन्ट्रोल ऐक्ट का और अब हाल ही में पर्यावरण अधिनियम, 1986 में भी पाए जाते हैं। आवेदकों की ओर से काउंसेल ने हमारा ध्यान सरकार द्वारा श्रीराम को उद्योग को चलाने के लिए दिए गए उधार, भूमि तथा अन्य सुविधाओं की पर्याप्त सहायता की ओर भी दिलाया है । राजकीय कार्यवाही करने के अमेरिकी सिद्धांत की सहायता लेते हुए हमारे समक्ष आवेदकों की ओर से यह भी दलील दी गई है कि यदि कोई प्राइवेट क्रियाकलाप राज्य द्वारा समर्थित, नियंत्रित या नियमित होता है तो वह सरकारी क्रियाकलाप में इस प्रकार घुल मिल जाता है कि उसे राजकीय कार्यवाही कहा जा सकता है और तब उसकी शक्ति के प्रयोग पर वही सांविधानिक अवरोध होंगे जो कि राज्य की शक्ति पर होते हैं ।

9. इसके विपरीत श्रीराम की ओर से काउंसेल ने अनुच्छेद 12 का इस प्रकार विस्तार करने के विरुद्ध सावधान किया है जिससे कि प्राइवेट निगम उसकी परिधि के भीतर आ जाएं । उसने दलील दी है कि निगम के कृत्यों का साधारण कानूनी विधि के अधीन, जैसे कि औद्योगिक विकास और विनियम अधिनियम, 1951, राज्य द्वारा नियंत्रण या विनियमन, केवल राज्य द्वारा विनियमन की पुलिस शक्ति के प्रयोग के अधीन होता है । इस प्रकार का विनियमन प्राइवेट निगम के क्रियाकलाप को राज्य के क्रियाकलापों में संपरिवर्तित नहीं करता है । वह क्रियाकलाप प्राइवेट निगम का क्रियाकलाप बना रहता है, राज्य अपनी पुलिस शक्ति का प्रयोग करते हुए केवल उस रीति का विनियमन करता है जिसमें उसे चलाया जाना है । इस बात पर जोर दिया गया कि ऐसा नियंत्रण जो किसी निगम को, राज्य के अभिकरण के रूप में मानता है, उस प्रकार का होना चाहिए जहां राज्य निगम की प्रबंध नीतियों का नियंत्रण करता है, चाहे वह ऐसा प्रबन्धमंडल के बोर्ड पर पर्याप्त प्रतिनिधित्व द्वारा करता है अथवा

प्रबन्धमंडल द्वारा कोई नई नीति अपनाने के पूर्व सरकार के पूर्व अनुमोदन की आवश्यकता द्वारा करता है अथवा किसी अन्य तंत्र द्वारा करता है। श्रीराम की ओर से काउंसेल द्वारा भारतीय स्थिति में राजकीय कार्यवाही के सिद्धांत की अनुपयुक्तता को भी इंगित किया गया। उसने कहा कि भारत में नियंत्रण और कृत्य का मापदंड यह अवधारित करने के लिए विकसित किया गया है कि क्या कोई विशिष्ट प्राधिकारी राज्य का परिकरण या अभिकरण है और इसलिए अनुच्छेद 12 के अर्थांतर्गत "अन्य प्राधिकारी" है। जब एक बार किसी प्राधिकारी को अनुच्छेद 12 के अधीन "अन्य प्राधिकारी" मान लिया जाता है तो वह अपने संपूर्ण क्रियाकलापों और कृत्यों के प्रयोजनार्थ राज्य है और अमरीका की कृत्यों को विभाजन करने की नीति जिस द्वारा किसी प्राधिकारी के कुछ कृत्यों राजकीय कार्य समझे जाते हैं, और अन्य प्राइवेट कार्य समझे जाते हैं, यहां लागू नहीं की जा सकती। विद्वान् काउंसेल ने यह भी इंगित किया कि वे अधिकार जो संविधान निर्माताओं द्वारा विनिर्दिष्ट रूप से प्राइवेट पक्षकारों के विरुद्ध उपलभ्य होने आशयित हैं, संविधान में उस रूप में उपबंधित हैं विशिष्टतः अनुच्छेद 17, 23 और 24 में उपबंधित हैं। अतः अनुच्छेद 12 का इस प्रकार का विस्तार करना जिससे कि उसकी परिधि के भीतर प्राइवेट निगम भी आ जाएं, मूल अधिकारों के अध्याय की स्कीम के विरुद्ध होगा।

10. इन विरोधी दलीलों पर विचार करने के लिए हम समझते हैं कि यह आवश्यक है कि हमें अनुच्छेद 112 के विकास के उस भाग का उल्लेख करना चाहिए जब यह न्यायालय उन मापदंडों को बनाने के मार्ग पर अग्रसर हुआ था, जिनके द्वारा निगम को अनुच्छेद 12 के अधीन "अन्य प्राधिकारी" पद कहा जा सकता है।

11. **राजस्थान इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड** बनाम **मोहन लाल**[1] में इस न्यायालय ने इस बात पर विचार किया था कि क्या राजस्थान विद्युत बोर्ड अनुच्छेद 12 में "अन्य प्राधिकारी" अभिव्यक्ति के अर्थान्तर्गत "प्राधिकारी" है। न्यायमूर्ति भार्गव ने, जिन्होंने बहुमत का निर्णय सुनाया था, यह कहा था कि अनुच्छेद 12 में "अन्य प्राधिकारी" अभिव्यक्ति के अन्तर्गत सभी ऐसे सांविधानिक और कानूनी प्राधिकारी आएंगे जिन पर विधि द्वारा शक्तियां प्रदत्त की गई हैं। विद्वान् न्यायाधीश ने यह भी कहा कि यदि व्यक्तियों के किसी निकाय को ऐसे निदेश जारी करने का प्राधिकार है जिनका अपालन दांडिक अपराध के रूप में दंडनीय होगा, यह इस बात का संकेत होगा कि संबंधित प्राधिकारी "राज्य" है। न्यायमूर्ति शाह ने, जिन्होंने बहुमत के निर्णय में दिए गए निष्कर्षों के साथ सहमति प्रकट करते हुए पृथक निर्णय दिया, "अन्य प्राधिकारी" अभिव्यक्ति को कुछ भिन्न अर्थ देना पसन्द किया। उन्होंने कहा कि ऐसे प्राधिकारी, चाहे वे सांविधानिक हों या कानूनी, "अन्य प्राधिकारी" अभिव्यक्ति के भीतर आएंगे यदि उनमें राज्य की प्रभुत्व सम्पन्न शक्ति निहित है अर्थात् ऐसे नियम और विनियम बनाने की शक्ति निहित है जिनमें विधि का बल है। इस निर्णय का विनिश्चयाधार इस प्रकार बताया जा सकता है कि कोई सांविधानिक या कानूनी प्राधिकारी "अन्य प्राधिकारी" अभिव्यक्ति के अर्थ के भीतर तब आएगा यदि उसमें तीसरे पक्षकारों को ऐसे आबद्धकर निदेश जारी करने की कानूनी शक्ति निहित है जिनका अपालन करने के दांडिक परिणाम निकलेंगे

---

[1] 1967(3) एस० सी० आर० 377.

अथवा यदि उसे ऐसे नियम और विनिमय बनाने की प्रभुत्व सम्पन्न शक्ति प्राप्त है जिनमें विधि का बल है ।

12. इस मापदंड का अनुसरण **सुखदेव** बनाम **भगत राम**[1] में मुख्य न्यायमूर्ति रे द्वारा किया गया था । उसी मामले में तथापि, न्यायमूर्ति मैथ्यु ने एक अधिक विस्तृत मापदंड प्रतिपादित किया था। विद्वान् न्यायाधीश ने इस बात पर जोर दिया कि "राज्य" की संकल्पना में हाल ही के कुछ वर्षों में आमूल परिवर्तन हुए हैं और आज "राज्य" का अर्थ केवल ऐसे भयोत्पादक तंत्र से नहीं है जिसका अत्यधिक प्राधिकार हो । इसकी अपेक्षा उसे मुख्य रूप से सेवा करने वाले निगम के रूप में देखा जाना चाहिए। उन्होंने इस कथन का विस्तार यह करते हुए किया कि इस समय जो सिद्धांत सामने आ रहे हैं, उनसे दर्शित होता है कि लोक निगम "राज्य" का अभिकरण या परिकरण होने के कारण, वे उन्हीं सांविधानिक परिसीमाओं के अध्यधीन हैं जैसे कि स्वयं राज्य है। इसके लिए दो पुरोभाव्य शर्तें हैं अर्थात् यह कि निगम राज्य द्वारा सृष्ट किया गया है और यह कि निगम में किसी व्यक्ति के सांविधानिक अधिकारों का अतिक्रमण करने की शक्ति विद्यमान है। इस न्यायालय ने **रामन्ना शेट्टी** बनाम **इन्टरनेशनल एअरपोर्ट अथारिटी**[2] में न्यायमूर्ति मैथ्यु द्वारा प्रस्तुत राज्य के परिकरण और अभिकरण के तर्क को स्वीकार किया था और अपनाया था तथा कुछ ऐसे मापदंड अधिकथित किए थे जिनकी सहायता से इस प्रकार का अनुमान लगाया जा सकता था। इससे पूर्व कि हम इन मापदंडों पर विचार करें हम समझते हैं कि उस विचार के प्रति निर्देश करना आवश्यक है जो न्यायमूर्ति मैथ्यु के विस्तृत मापदंड के प्रतिपादन के पीछे कार्य कर रहा था, जो कि हमारे लिए समान रूप से सुसंगत है विशेषत: इस तथ्य को देखते हुए कि अनुच्छेद 12 के अधीन परिभाषा समावेषी परिभाषा है और सर्वथापूर्ण परिभाषा नहीं हैं। यह चिन्ता मनमानी और अनियमित शक्ति को, चाहे जहां भी और जिस प्रकार भी वह डाली गई हो, दबाने की है ।

13. रामन्ना डी० शेट्टी **बनाम** इन्टरनेशनल एअरपोर्ट अथारिटी में इस न्यायालय ने उस मापदंड पर विचार करते हुए जिसके आधार पर यह अवधारित किया गया था कि क्या कोई निगम सरकार के परिकरण और अभिकरण के रूप में कार्य कर रहा है, यह था कहा कि पूर्णत: समावेशी या सर्वथापूर्ण मापदंड विरचित करना, जो कि पर्याप्त रूप से प्रश्न का उत्तर दे सकें, संभव नहीं है। कोई ऐसा बना बनाया सिद्धांत नहीं है जो निगम का सही रूप में सरकार के परिकरण या अभिकरण में तथा उनमें जो ऐसा नहीं है, विभाजन कर सके। मापदंड को विरचित करते हुए न्यायालय ने कहा कि संयुक्त राज्य अमरीका में विकसित राजकीय कार्यवाही की संकल्पना के सादृश्य की सहायता ली जा सकती है । इसमें संयुक्त राज्य अमरीका के न्यायालयों ने सुझाव दिया है कि यदि किसी प्राइवेट अभिकरण की, राज्य द्वारा असाधारण सहायता की जाती है तो वह उन्हीं सांविधानिक परिसीमाओं के अध्यधीन होगा जिनके अध्यधीन राज्य है । यह इंगित किया गया कि राज्य की साधारण सामान्य विधि और कानूनी संरचना, जिसके अधीन उसके लोग अपने प्राइवेट कार्यकलापों को चलाते हैं,

---

[1] [1975] 3 उम० नि० प० 30=1975(1) एस० सी० सी० 421.

[2] [1980] 2 उम० नि० प० 961=1979(3) एस० सी० आर० 1014.

सम्पत्ति के स्वामी बनते हैं और संविदा करते हैं, प्रत्येक विधिक सामर्थ्य के अनुसार समता का उपभोग करता है। ऐसी सहायता नहीं है जो किसी प्राइवेट आचरण को राजकीय कार्यवाही में बदल देगी। किंतु यदि अत्यधिक और असामान्य वित्तीय सहायता दी जाती है और ऐसी सहायता का प्रयोजन उस प्रयोजन से मिलता है जिसके लिए निगम ऐसी सहायता का प्रयोग करने के लिए आशयित है और ऐसा प्रयोजन लोकात्मक स्वरूप का है तो यह परिस्थिति यह अनुमान लगाने के लिए सुसंगत होगी कि वह निगम सरकार का परिकरण या अभिकरण है।

14. राज्य के नियंत्रण के प्रश्न पर न्यायालय ने आर० डी० शेट्टी (पूर्वोक्त) के मामले में यह स्पष्ट किया कि राज्य द्वारा कुछ ही नियंत्रण इस प्रश्न का अवधारण नहीं करेगा क्योंकि राज्य को सभी प्रकार के कारबारी संगठनों पर अपनी पुलिस शक्ति के अधीन पर्याप्त रूप से नियंत्रण प्राप्त है। किंतु राज्य की ओर से वित्तीय सहायता और साथ ही निगम के प्रबंध और नीतियों पर अप्रायिक रूप से नियंत्रण का निष्कर्ष उनके क्रियाकलापों के स्वरूप को राज्य की कार्यवाही का रूप दे सकता है।

15. कृत्य पर आधारित मापदंड पर विचार करते हुए अर्थात् यह कि निगम सरकारी कृत्य करता है, न्यायालय ने इस बात पर जोर दिया कि किसी कृत्य का सरकारी कृत्य के रूप में वर्गीकरण किसी पूर्ववर्ती अनुमान के आधार पर नहीं करना चाहिए अपितु उस आधार पर करना चाहिए कि राज्य, अपने क्रियाकलापों के भाग के रूप में किस बात को अपरिहार्य समझता है क्योंकि राज्य अपनी अर्थव्यवस्था के लिए यह अनिवार्य समझ सकता है कि वह रेल, रोड, मिल या सिंचाई पद्धति को अपने स्वामित्व में उसी प्रकार ले और उसका संचालन करे जिस प्रकार वह पुल, सड़क की विद्युत व्यवस्था या मल व्ययन संयंत्र लेता है। न्यायालय ने आर० डी० शेट्टी के मामले में उस बात को भी पुनः दोहराया जो कि सुखदेव **बनाम** भगत राम में न्यायमूर्ति मैथ्यु द्वारा इंगित की गई थी कि "उच्च लोकहित या लोक कृत्यों के मामलों में लगी संस्थाएं, अपने द्वारा किए जा रहे कृत्यों की प्रकृति के आधार पर सरकारी अभिकरणों के रूप में कार्य करती हैं। वे क्रियाकलाप, जो कि समाज के लिए अत्यधिक मूलभूत हैं, परिभाषा द्वारा उतने अधिक महत्वपूर्ण हैं कि उन्हें सरकारी कृत्य नहीं समझा जाता।

16. उपरोक्त विवेचन का आर० डी० शेट्टी के मामले में उपसंहार न्यायालय द्वारा निम्नलिखित पांच बातों को प्रतिपादित करते हुए किया गया अर्थात् (1) राज्य द्वारा दी गई वित्तीय सहायता और ऐसी महायता का आयाम, (2) किसी अन्य प्रकार की कोई सहायता, चाहे वह प्रायिक हो या असाधारण, (3) राज्य द्वारा निगम के प्रबंध और नीतियों पर नियंत्रण—ऐसे नियंत्रण की प्रकृति तथा उसका विस्तार, (4) राज्य द्वारा प्रदत्त या राज्य द्वारा संरक्षित एकाधिकार की प्रास्थिति और (5) निगम द्वारा दिए जा रहे कृत्य, क्या वे लोक कृत्य हैं जो सरकारी कृत्यों से निकटतः संबंधित हैं। उपरोक्त बातें यह अवधारित करने के लिए सुसंगत मापदंड के रूप में बताई गई थी कि कोई निगम राज्य का परिकरण या अभिकरण है अथवा नहीं, यद्यपि न्यायालय ने यह इंगित करने में सावधानी बरती कि ऊपर प्रगणित बातें सर्वथापूर्ण नहीं हैं और यह सभी सुसंगत बातों का संकलित और मिला-जुला प्रभाव ही होगा जिसे नियंत्रणकारी माना जाएगा।

17. **रामन्ना शेट्टी**[1] के मामले में इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित मापदंड को इस न्यायालय ने **अजय हासिया** बनाम **खालिद मुजीब**[2] में लागू किया था जहां इस बात पर पुन: जोर दिया गया था कि—

"जहां मानव अधिकारों के पोषण से संबंधित महत्वपूर्ण सांविधानिक मूल अधिकार खतरे में हों वहां संविधान की बाहरी रूपरेखा की ओर नहीं बल्कि उसकी कृत्यकारी वास्तविकता को ही उपचार यंत्र मानना चाहिए क्योंकि सांविधानिक विधि में उसके बाहरी प्रारूप को नहीं बल्कि आंतरिक तत्वों को देखा जाता है। अब यह बात बहुत स्पष्ट हो गई है कि सरकार नैसर्गिक व्यक्तियों की के परिकरण और अधिकरण के माध्यम से कार्य कर सकती है अथवा वह अपने कृत्यों का निर्वहन करने के लिए विधिक व्यक्तियों की संस्था अथवा अभिकरण को नियोजित कर सकती है। वस्तुत: यह सरकार ही है जो निगम की संस्था या अभिकरण के माध्यम से कार्य करती है और प्रबंधतंत्र तथा प्रशासन की सुविधा के प्रयोजन के लिए निगमित स्वरूप का न्यायिक मुखोटा लगाने से वास्तविकता के उस सच्चे स्वरूप को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता जिसके पीछे सरकार काम करती है। यदि सरकार अपने अधिकारियों के माध्यम से कार्य करते हुए कुछ सांविधानिक सीमाओं के अधीन कार्य करती है तो सुतराम् इसका अभिप्राय यह होगा कि किसी निगम की संस्था या अभिकरण के माध्यम से कार्य करने वाली सरकार को भी इन्हीं सीमाओं के भीतर कार्य करना चाहिए।"

सांविधानिक गारंटियों का निर्वचन करने के लिए अर्थान्वयन के जिन सिद्धान्तों को अपनाया जाना है उनके बारे में न्यायालय ने इस प्रकार कहा—

"·········सांविधानिक गारण्टी के लागू करने में······सूक्ष्म और संकुचित न्यायिक निर्वचन द्वारा उनके क्रियान्वयन में बाधा नहीं उत्पन्न होने दी जाएगी। न्यायालयों को इस बात के प्रति जिज्ञासु होना चाहिए कि वे ऐसे सभी प्राधिकारियों को जो सरकार की संस्था या अधिकरण के रूप में कार्य करते हैं या ऐसे निगमित व्यक्तियों को जो सरकार के रूप में कार्य करते हैं, अपनी सीमाओं में ले ले और मूल अधिकारों के क्षेत्र और विस्तार को व्यापक बनाए जिससे कि सरकार अपने अनगिनत क्रियाकलापों में, चाहे वे नैसर्गिक व्यक्तियों के माध्यम से अथवा निगमित इकाईयों के माध्यम से किए जा रहे हों, मूल अधिकारों की आधारभूत बाध्यता के अधीन काम कर सके।"

इस मामले में न्यायालय ने इस विवाद को भी समाप्त कर दिया कि वह रीति जिसमें कोई निगम अस्तित्व में आता है, इस प्रश्न से सुसंगत है कि वह राज्य का परिकरण या अभिकरण है। न्यायालय ने कहा कि यह बात यह अवधारित करने के प्रयोजनार्थ तत्वहीन है कि क्या कोई निगम राज्य का परिकरण या अभिकरण है या नहीं अथवा क्या वह कानून द्वारा या कानून के अधीन सृष्ट किया गया है या नहीं। जांच इस बारे में नहीं की जाएगी कि किस प्रकार

---

1 [1980] 2 उम० नि० प० 961=1979(3) एस० सी० आर० 1014.

2 [1981] 4 उम० नि० प० 419=1981(2) एस० सी० आर० 79.

न्यायिक व्यक्ति पैदा हुआ है अपितु इस बारे में की जाएंगी कि वह अस्तित्व में क्यों लाया गया है। निगम कानून द्वारा सृष्ट कानूनी निगम हो सकता है अथवा वह एक सरकारी कंपनी या कंपनी अधिनियम 1956 के अधीन बनाई गई कंपनी हो सकता है अथवा वह सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 के अधीन या किसी अन्य समरूप कानून के अधीन रजिस्ट्रीकृत सोसाइटी हो सकता है। वह अनुच्छेद 12 की परिधि के भीतर उस दशा में आएगा यदि सुसंगत तथ्यों का उचित निर्धारण करने पर उसे राज्य का परिकरण या अभिकरण पाया जाता है।

18. अतः यह देखने में आएगा कि इस न्यायालय ने निगम बनाने की युक्ति को, मूल अधिकारों के सांविधानिक नियंत्रण को समाप्त करते हुए, एक बाधा के रूप में प्रयोग में लाना अनुज्ञात नहीं किया। इसके विपरीत न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है—

> "निगमों को सांविधानिक विवेक की आवश्यकता से निर्मुक्त कर देना खतरनाक है और इस प्रकार यदि भाषा के अनुसार ऐसा निर्वचन किया जा सकता है, जिससे सरकारी अभिकरण, चाहे उनका प्रभाव कुछ भी हो, सांविधानिक परिसीमाओं के अधीन हो जाते हैं तो उन्हें राज्य के भीतर किसी अन्य सत्ता के रूप में पनपने की अनुज्ञा देने के विकल्प के बजाय न्यायालयों द्वारा ऐसा निर्वचन अपनाया जाना चाहिए।" **सोम प्रकाश** बनाम **भारत संघ**[1]।

19. उपरोक्त प्रतिपादन को अपना मार्गदर्शक मानते हुए अब हमें इस बात की परीक्षा करने के लिए अग्रसर होना चाहिए कि क्या श्रीराम जैसा प्राइवेट निगम अनुच्छेद 12 की परिधि के भीतर आता है जिससे कि उस पर अनुच्छेद 21 का अनुशासन लागू किया जा सके।

20. रसायन और उर्वरक का विनिर्माण करने में लगे प्राइवेट निगमों को आबंटित कृत्यों का निर्धारण करने की दृष्टि से हमें सरकार की औद्योगिक नीति की परीक्षा करनी पड़ेगी और ऐसे प्राइवेट निगमों द्वारा चलाए जा रहे क्रियाकलापों के संबंध में राज्य द्वारा उन्हें दिए गए लोकहित के महत्व को देखना होगा।

21. औद्योगिक नीति संकल्प, 1956 के अधीन उद्योगों को तीन प्रवर्गों में वर्गीकृत किया गया था। ऐसा उनमें से प्रत्येक में राज्य द्वारा किए जा रहे कार्य पर ध्यान देते हुए किया गया था। प्रथम वर्ग के बारे में राज्य का अनन्य उत्तरदायित्व था। दूसरे प्रवर्ग के अंतर्गत वे उद्योग आते थे जो कि धीरे-धीरे राज्य के स्वामित्व के अधीन आएंगे और जिनमें राज्य नए उपक्रमों को स्थापित करने में साधारणतः पहल करेगा किन्तु जिनमें प्राइवेट समुद्यमों से भी आशा की जाएगी कि वे या तो स्वयं या राज्य के भाग लेने से ऐसे उपक्रमों को बढ़ाने तथा उनका विकास करने के राज्य के प्रयासों की अनुपूर्ति करें। तीसरे प्रवर्ग के अंतर्गत बाकी सभी उद्योग आएंगे और उनके भविष्य का विकास प्राइवेट सेक्टर की पहल और प्रोद्यम पर साधारणतः छोड़ दिया जाएगा। इस संकल्प की अनुसूची बी में ऐसे उद्योगों को प्रगणित किया गया है।

---

[1] [1981] 4 उम० नि० प० 462=1981(2) एस० सी० आर० 1.

22. औद्योगिक नीति संकल्प, 1948 के परिशिष्ट 1 में, जो उद्योग में राज्य के भाग लेने की समस्या और उन दशाओं के बारे में था जिनमें प्राइवेट उद्यमों को कार्य करने दिया जाना चाहिए, कहा गया था कि इस बारे में कोई संदेह नहीं हो सकता कि राज्य को उद्योगों के विकास में धीरे-धीरे सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए। तथापि वर्तमान दशाओं में राज्य का तंत्र और उसके साधन उसे उद्योगों में तत्काल उतने विस्तार के साथ कार्य न करने दें जितना की वांछनीय है। नीति में यह घोषित किया गया था कि आने वाले कुछ समय के लिए राज्य अपने वर्तमान क्रियाकलापों का विस्तार करके, जहां कि वह पहले से ही कार्य कर रहा है और अन्य क्षेत्रों में उत्पादन के नए यूनिटों पर अपना ध्यान संकेन्द्रित करके राष्ट्रीय संपदा की वृद्धि अधिक शीघ्रता के साथ कर सकता है।

23. इन विचारों के आधार पर, सरकार ने यह विनिश्चय किया कि आयुध और गोलाबारूद का विनिर्माण, एटम ऊर्जा का उत्पादन और नियंत्रण तथा रेल परिवहन का स्वामित्व और प्रबंध केंद्रीय सरकार का अनन्य एकाधिकार होगा। कोयला, लोहा और इस्पात, विमान विनिर्माण, जहाज निर्माण, टेलीफोन, तार तथा बेतार संयत्र और खनिज तेल के विनिर्माण में नये उपक्रमों की स्थापना राज्य का अनन्य उत्तरदायित्व होता सिवाए उस दशा के जहां राष्ट्रीय हित में स्वयं राज्य केंद्रीय सरकार के नियंत्रण के अधीन प्राइवेट उद्यम की सहायता प्राप्त करना आवश्यक समझे।

24. नीति विषयक संकल्प में कुछ आधारभूत महत्व के उद्योगों का वर्णन है जिनकी योजना और विनियमन केन्द्रीय सरकार द्वारा राष्ट्रीय हित में आवश्यक समझा गया। इस प्रकार वर्णित 18 उद्योगों में से, जिनमें केन्द्रीय नियंत्रण की अपेक्षा समझी गई, भारी रसायन और उर्वरक भी शामिल हैं।

25. नीति विषयक संकल्प के उद्देश्यों का अनुपालन करने की दृष्टि से उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1951 अधिनियमित किया गया, जिसने उसके उद्देश्य और कारणों के अनुसार, केन्द्रीय नियंत्रण के अधीन अनेक ऐसे महत्वपूर्ण उद्योगों का विकास और विनियमन केंद्र के नियंत्रण के अधीन ला दिया जिनके कार्यकलाप संपूर्ण भारत पर प्रभाव डालते थे और जिनका विकास पूरे भारत के हित में आर्थिक दृष्टि से किया जाना चाहिए। अधिनियम की धारा 2 में घोषित किया गया है कि यह लोकहित में समीचीन है कि संघ अपने नियंत्रण में प्रथम अनुसूची में विनिर्दिष्ट उद्योग ले ले। रसायन और उर्वरक प्रथम अनुसूची में क्रमशः मद संख्या 19 और 18 के रूप में दिए गए हैं।

26. यदि नीति संकल्प में की गई घोषणा और अधिनियम का विश्लेषण किया जाए तो हमें पता चलेगा कि रसायन और उर्वरक का उत्पादन करने का कार्यकलाप राज्य द्वारा महत्वपूर्ण लोकहित का उद्योग माना जाता है जिसका जनसाधारण से संबंध होना यह आवश्यक बनाता है कि इस क्रियाकलाप को अन्ततः स्वयं राज्य द्वारा किया जाए, यह कि बीच की कालावधि में राज्य की सहायता से और राज्य के नियंत्रण के अधीन किया जाए, प्राइवेट निगम भी राज्य के इस प्रयास में सहायता करने के लिए अनुज्ञात किए जा सकते हैं। इस दृष्टिकोण के आधार पर आवेदकों की ओर से यह दलील दी गई कि राज्य की इस घोषित औद्योगिक नीति को देखते हुए, रसायन और उर्वरक का विनिर्माण करने वाले प्राइवेट निगमों

के बारे में भी यह कहा जा सकता है कि वे ऐसे क्रियाकलापों में लगे हुए हैं जो समाज के लिए इतने अधिक मूलभूत हैं जिन्हें आवश्यक रूप से सरकारी कृत्य समझा जा सकता है। (सुखदेव **बनाम** भगत राम, रामन्ना शेट्टी और अजय हासिया)

27. आवेदकों की ओर से यह इंगित किया गया कि क्योंकि श्रीराम, उद्योग विकास और विनियमन अधिनियम, 1951 के अधीन रजिस्ट्रीकृत है, अतः उसके क्रियाकलापों पर सरकार का विस्तृत नियंत्रण और पर्यवेक्षण है। अधिनियम के अधीन किसी नए औद्योगिक उपक्रम की स्थापना के लिए अथवा अधिनियम की प्रथम अनुसूची में शामिल किसी अनुसूचित उद्योग को चलाने वाले वर्तमान औद्योगिक उपक्रम द्वारा किसी नई वस्तु का विनिर्माण करने के लिए या उसकी क्षमता बढ़ाने के लिए अनुज्ञप्ति प्राप्त करना आवश्यक है। किसी विशिष्ट यूनिट को अनुज्ञप्ति देने से इंकार करके सरकार किसी विशिष्ट प्रदेश में अति सकेन्द्रीकरण या किसी विशिष्ट उद्योग में अति विनिधान को रोक सकती है। इसके अतिरिक्त अनुज्ञप्ति में क्षमता विनिर्दिष्ट करने की अपनी शक्ति द्वारा वह किसी विशिष्ट उद्योग के अति विकास को भी रोक सकती है यदि ऐसा उद्योग पहले से ही अपनी अधिकतम क्षमता तक पहुंच चुका है। अधिनियम की धारा 18 सरकार को अनुसूचित उद्योग द्वारा विनिर्मित वस्तुओं के प्रदाय, वितरण, कीमत आदि पर नियंत्रण रखने के लिए सशक्त बनाती है और धारा 18-क के अधीन सरकार अनुसूचित उद्योग में लगे औद्योगिक उपक्रम का प्रबंध और नियंत्रण उस दशा में संभाल सकती है यदि अन्वेषण के पश्चात् यह पाया जाता है कि उस उपक्रम के क्रियाकलाप ऐसी रीति में किए जा रहे हैं जो लोक हित के प्रतिकूल है और धारा 18कक के अधीन कतिपय आपातिक मामलों में अन्वेषण के बिना प्रबंध को अपने हाथ में ले लेना भी अनुज्ञात है। चूंकि श्रीराम एक अनुसूचित उद्योग चला रहा है, अतः वह रजिस्ट्रीकरण और अनुज्ञप्ति प्राप्त करने की इस कठोर पद्धति के अधीन आता है। उस पर ऐसे विभिन्न निदेश भी लागू होते हैं जो सरकार द्वारा समय-समय पर जारी किए जाएं और यह धारा 18-क और 18-छ के अधीन सरकार की शक्तियों के प्रयोग के अधीन है।

28. श्रीराम के लिए कारखाना अधिनियम के अधीन अनुज्ञप्ति अभिप्राप्त करना अपेक्षित है और वह अधिनियम के अधीन प्राधिकारियों, निदेशों और आदेशों के अधीन भी है। वह दिल्ली नगर निगम अधिनियम 1957 के अधीन नगरपालिका प्राधिकारियों से अपने विनिर्माण के कार्यकलापों के लिए अनुज्ञप्ति अभिप्राप्त करने के लिए भी अपेक्षित है। उसे जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1974 के अधीन विस्तृत पर्यावरण विनियम लागू होते हैं और चूंकि कारखाना ऐसे क्षेत्र में स्थित है जहां पर वायु प्रदूषण के बारे में नियंत्रण किए गए हैं, अतः वह वायु (प्रदूषण का निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1981 के विनियमन के अधीन भी हैं। यह सच है कि कंपनी की आंतरिक प्रबन्ध नीतियों के संबंध में सरकार द्वारा किसी नियंत्रण का प्रयोग नहीं किया जाता है। तथापि, नियंत्रण का प्रयोग श्रीराम के ऐसे सभी क्रियाकलापों के बारे में किया जाता है जो कि लोकहित को जोखिमपूर्ण बना सकते हैं। यह कृत्यकारी नियंत्रण विशेष महत्व रखता है क्योंकि उर्वरक उद्योग में ऐसी क्षमता है जो समुदाय के स्वास्थ्य और क्षेम पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती है और चूंकि इसके साथ लोकहित जुड़ा हुआ है, जो कि शायद सरकार के इस नीति विषयक विनिश्चय का आधार है कि अन्ततः इस उद्योग को अनन्य रूप से स्वयं चलाया जाए और इसी कारण ऐसे

उद्योग के कृत्यों पर नियंत्रण रखा गया है। इस विस्तृत कृत्यकारी नियंत्रण के साथ हम देखते हैं कि श्रीराम को विभिन्न अभिकरणों के माध्यम से सरकार से करोड़ों रुपयों का उधार और ओवर ड्राफ्ट के रूप में सहायता मिलती है। इसके अतिरिक्त श्रीराम कास्टिक सोड़ा, क्लोरीन आदि के विनिर्माण कार्य में लगा हुआ है। उसके विभिन्न यूनिट एक ही स्थान पर विद्यमान हैं और वह चारों ओर से ऐसी कालोनियों से घिरा हुआ है जिनमें बहुत बड़ी संख्या में लोग रहते हैं। क्लोरीन गैस स्वीकृत रूप से जीवन और स्वास्थ्य के लिए खतरनाक है। यदि यह गैस स्टोरेज टैंक से निकल जाए अथवा भरे हुए सिलेंडरों से या उत्पादन के अनुक्रम में किसी अन्य रूप में निकल जाए तो आसपास के रहने वाले लोगों के स्वास्थ्य और क्षेम पर गंभीर प्रभाव पड़ सकता है। इस प्रकार श्रीराम एक ऐसे कार्यकलाप में लगा हुआ है जिसमें बड़ी संख्या में जनता के प्राण के अधिकार पर आक्रमण करने की शक्ति है। प्रश्न यह है कि क्या ये तथ्य संगृहीत रूप से श्रीराम को अनुच्छेद 12 की परिधि के भीतर लाने के लिए पर्याप्त हैं। प्रथमदृष्टया इस बारे में बहस की जा सकती है कि जब आर्थिक अभिकर्ता, आर्थिक उद्यमी और आर्थिक लाभ के आबंटनकर्ता के रूप में राज्य की शक्ति मूल अधिकारों की परिसीमाओं के अध्यधीन है (देखिए **यूरेशियन इक्विपमैंट एण्ड कैमिकल्स लि०** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य**[1] **रास बिहारी पांडे** बनाम राज्य[2], **रामन्ना शेट्टी** बनाम **अन्तर्राष्ट्रीय विमान पत्तन प्राधिकरण**[3] और **कस्तूरी लाल रेड्डी** बनाम **जम्मू कश्मीर राज्य**[4]) तो राज्य के कृत्यकारी नियंत्रण के अधीन काम करने वाला प्राइवेट निगम जो समुदाय के स्वास्थ्य और क्षेम के लिए जोखिमपूर्ण कियाकलापों में लगा हुआ है, और जो लोकहित से घिरा हुआ है तथा जिस कार्य को अन्ततः राज्य स्वयं अपनी औद्योगिक नीति के अधीन अनन्य रूप से चलाना चाहता है, उन्हीं परिसीमाओं के अध्यधीन क्यों नहीं होगा। किंतु हम इस प्रश्न को विनिश्चित करना और इस बारे में कोई निश्चित निर्णय देना उन कारणों से नहीं चाहते हैं जिन्हें हम इस निर्णय के अनुक्रम में बाद में बताएंगे।

29. दोनों ओर के काउंसेलों द्वारा हमारे समक्ष बहस के अनुक्रम में अमेरिका के राजकीय कार्यवाही के सिद्धांत (अमेरिकन डॉक्ट्राइन ऑफ स्टेट एक्शन) की बाबत विस्तारपूर्वक बहस की गई है। विद्वान् काउंसेल ने अमेरिका में इस सिद्धांत के, विकास के बारे में सविस्तार विवेचन किया है। हमें पता है कि अमेरिका में क्योंकि चौदहवां संशोधन केवल राज्य के विरुद्ध ही उपलभ्य है अतः न्यायालयों ने प्राइवेट पक्षकारों द्वारा मूलवंशीय विभेद से निबटने के लिए राजकीय कार्यवाही का सिद्धांत निकाला है जिसके अधीन यह अभिनिर्धारित किया गया था कि जहां कहीं भी किसी प्राइवेट क्रियाकलाप की राज्य द्वारा महत्वपूर्ण रूप में सहायता या समर्थन किया जाता है अथवा उसे सुविधा प्रदान की जाती है तो इस प्रकार का क्रियाकलाप राजकीय कार्यवाही का रूप ले लेता है और वह चौदहवें संशोधन की सांविधानिक परिसीमाओं के अधीन आ जाता है। वह ऐतिहासिक संदर्भ, जिसमें कि यूनाइटेड स्टेट्स में राजकीय कार्यवाही के सिद्धांत का विकास हुआ है, हमारे प्रयोजन के

---

[1] [1975] 2 एस० सी० आर० 674.

[2] [1981] 3 एस० सी० आर० 374.

[3] [1980] 2 उम० नि० प० 961=[1979] (3) एस० सी० आर० 1014.

[4] [1980] 3 एस० सी० आर० 1338.

लिए असंगत है, विशेष रूप से इसलिए क्योंकि हमारे संविधान में अनुच्छेद 15(2) दिया गया है। किन्तु राजकीय सहायता नियंत्रण और विनियमन के सिद्धांत के पीछे जो नियम है वह प्राइवेट क्रियाकलाप पर इतना अधिक प्रभाव डालता है कि वह राजकीय कार्यवाही का रूप ले लेता है और यही बात हमारे लिए विचारणीय है तथा वह भी कुछ सीमा तक जिस तक कि उसका भारतीयकरण किया जा सकता है और हमारे सांविधानिक विधिशास्त्र के साथ सामंजस्यपूर्ण रूप में मिलाया जा सकता है। यह बात कि हम किसी भी रूप में अपने को सांविधानिक विधि के अमेरिका द्वारा किए गए प्रतिपादनों से आबद्ध नहीं समझते हैं, इस तथ्य से दर्शित होती है कि **रामन्ना शेट्टी**[1] (पूर्वोक्त) के मामले में इस न्यायालय ने **जैकसन** बनाम **मेट्रोपालिटन ऐडिसन कंपनी**[2] में न्यायमूर्ति डगलस की अल्पमत राय को न्यायमूर्ति रेहनकिस्ट की बहुमत राय की अपेक्षा अधिमान दिया था और **एअर इंडिया** बनाम **नरगेश मिर्जा**[3] में इस न्यायालय ने **जनरल इलैक्ट्रिक कंपनी मारथा** बनाम **गिल्बर्ट**[4] में अल्पमत राय को अधिमान देते हुए कहा था कि अमेरिकी संविधान के उपबंध सदैव भारतीय दशाओं में अथवा हमारे संविधान के उपबंधों के संदर्भ में लागू नहीं किए जा सकते और जबकि अमेरिकी विनिश्चयों द्वारा प्रतिपादित कुछ सिद्धांत उपयोगी मार्गदर्शन कर सकते हैं, तथापि उन सिद्धांतों का हमारे संविधान के उपबंधों को लागू करने में निकटता से पालन करना ठीक नहीं है क्योंकि हमारे देश में सामाजिक दशाएं भिन्न हैं।

30. इससे पूर्व कि हम इस विषय के आगे बढ़ें, हम यह इंगित कर दें कि इस न्यायालय ने पिछले कुछ वर्षों में अनुच्छेद 12 के क्षितिज का, हमारे निगमों की संरचना में मानवीय अधिकारों को आदर प्रदान करने के लिए तथा सामाजिक चेतना लाने के लिए विस्तार किया है। इस विस्तार का प्रयोजन निगमों को बनाने के मूल उद्देश्य को नष्ट करना नहीं है अपितु मानव अधिकारों के विधिशास्त्र को बढ़ावा देना है। प्रथमदृष्टया हम श्रीराम की ओर से विद्वान् काउंसेल की आशंकाओं को सुआधारित मानने के लिए तैयार नहीं है जब उन्होंने यह कहा है कि हमारे द्वारा अनुच्छेद 12 की परिधि के भीतर उन्हें शामिल कर लेने से और इस प्रकार अनुच्छेद 21 के अनुशासन में उन्हें लाने से ऐसे प्राइवेट निगम, जिनके क्रियाकलाप लोगों के प्राण और स्वास्थ्य पर प्रभाव डाल सकते हैं, प्राइवेट औद्योगिक क्रियाकलाप का उत्साह बढ़ाने और उन्हें अनुज्ञप्त करने की नीति पर गहरा प्रहार करेंगे। जब भी कभी मानव अधिकारों के क्षेत्र में कोई नई प्रगति की जाती है तब सदैव यथास्थिति चाहने वाले व्यक्तियों द्वारा यह आशंका व्यक्त की जाती है कि उससे पद्धति के सुचारू कार्यकरण के मार्ग में अनेक कठिनाइयां आएंगी और स्थिरता पर प्रभाव पड़ेगा। इसी प्रकार की आशंका तब व्यक्त की गई थी जब इस न्यायालय द्वारा **रामन्ना शेट्टी**[1] के मामले में पब्लिक सेक्टर निगमों को अनुच्छेद 12 की परिधि और विस्तार क्षेत्र के भीतर लाया गया था और उन्हें मूल अधिकारों के अनुशासन के अधीन किया गया गया था। ऐसे व्यक्तियों द्वारा अभिव्यक्त की गई

---

[1] [1980] 2 उम० नि० प० 961=1979(3) एस० सी० आर० 1014.

[2] 42 लायर्स एडीसन (2 डी०) 477.

[3] [1982] 2 उम० नि० प० 1141=1982(1) एस० सी० आर० 438.

[4] 50 लायर्स एडीसन (2 डी०) 343.

ऐसी आशंकाएं, जो कि मानव अधिकारों के नए और नवीन विस्तार से प्रभावित हो सकते हैं, इस न्यायालय को मानव अधिकारों की परिधि का विस्तार करने से और उनकी पहुंच की परिधि का विस्तार करने में बाधा नहीं डालेंगे यदि अन्यथा ऐसा करना संविधान के उपबंधों की भाषा का अतिक्रमण किए बिना संभव हो। सृजनात्मक निर्वचन और उदार नवीन विचारों के माध्यम से ही मानव अधिकारों के विधिशास्त्र का हमारे देश में इस महत्वपूर्ण सीमा तक विकास हुआ है और मानव अधिकारों के आंदोलन की दिशा में यह आगे प्रगति, यथास्थिति बनाए रखने वाले व्यक्तियों द्वारा अभिव्यक्त निराधार आशंकाओं के कारण रुकने नहीं दी जाएगी। किंतु हम इस वर्तमान प्रक्रम पर अंतिम रूप से यह विनिश्चित करना प्रस्तावित नहीं करते हैं कि क्या श्रीराम जैसा प्राइवेट निगम अनुच्छेद 12 की परिधि और विस्तार क्षेत्र के भीतर आएगा क्योंकि हमारे पास इस प्रश्न पर गहराई से सोचने के लिये पर्याप्त समय नहीं था। इस मामले की सुनवाई हमारे समक्ष 15 दिसंबर, 1986 को पूरी हुई और हमसे चार दिन की कालावधि के भीतर 19 दिसंबर, 1986 तक अपना निर्णय सुनाने की अपेक्षा की गई। अत: हमारा यह मत है कि इस प्रश्न पर हमें इस प्रक्रम पर कोई निश्चित निर्णय नहीं देना चाहिए। किन्तु हम इस प्रश्न को किसी पश्चात्‌वर्ती प्रक्रम पर उचित और सविस्तार विचार करने के लिए, यदि ऐसा करना आवश्यक हो, छोड़ते हैं।

31. हमें एक अन्य प्रश्न पर भी विचार करना है जिस पर हमारे समक्ष अत्यधिक बहस की गई है और वह प्रश्न यह है कि किसी ऐसे उद्यम के दायित्व की मात्रा क्या है जो कि किसी परिसंकटमय अथवा अंतर्निहित रूप से खतरनाक उद्योग में लगा है, यदि ऐसे उद्योग में होने वाली किसी दुर्घटना के कारण लोगों की मृत्यु हो जाती है या उन्हें क्षति पहुंचती है। क्या **रैलेंड्स** बनाम **फ्लैचर**[1] का नियम लागू होता है अथवा कोई अन्य सिद्धांत भी है जिस पर दायित्व का अवधारण किया जा सकता है। रैलेंड्स बनाम फ्लैचर का नियम 1866 में बनाया गया था और उसमें यह उपबंधित है कि कोई व्यक्ति जो अपने प्रयोजनों के लिए अपनी भूमि पर कुछ चीज लाता है और उसे वहां संगृहीत करता है और रखता है जो कि निकलने के कारण रिष्टि कारित कर सकती है, उसे अपने जोखिम पर रखना चाहिए, और यदि वह ऐसा करने में असफल रहता है तो वह ऐसी नुकसानी के लिए प्रथमदृष्ट्या दायित्वाधीन है जो कि उसके निकलने का स्वाभाविक परिणाम है। इस नियम के अधीन दायित्व कठोर है और प्रतिरक्षा में यह नहीं कहा जा सकता कि जो वस्तु निकल गई थी वह उस व्यक्ति द्वारा जानबूझकर किए गए किसी कार्य, व्यतिक्रम या उपेक्षा के कारण नहीं थी अथवा यह कि उसे उसके वहां पर विद्यमान होने की कोई जानकारी नहीं थी। इस नियम में दायित्व का यह सिद्धांत अधिकथित किया गया था कि यदि कोई व्यक्ति अपनी भूमि पर कोई वस्तु लाता है और संगृहीत करता है और वहां कोई ऐसी चीज रखता है जिससे हानि होनी संभाव्य है और ऐसी वस्तु निकल जाती है और अन्य व्यक्ति को नुकसान पहुंचाती है तो वह उसको होने वाली हानि के लिए प्रतिकर देने के दायित्वाधीन है। नि:संदेह यह नियम उस भूमि का अस्वाभाविक प्रयोग करने वाले व्यक्तियों को ही केवल लागू होता है और यह उन वस्तुओं के संबंध में लागू नहीं होता जो स्वाभाविक रूप से भूमि पर होती हैं या जहां कि उसका निकलना ईश्वरीय कार्य हो और किसी परव्यक्ति का कार्य हो या क्षतिग्रस्त व्यक्ति के व्यतिक्रम का परिणाम हो या जहां वह

---

[1] एल० आर० (1868) 3 इंग्लिश एण्ड आइरिश अपील केसेज (हाउस आफ लार्ड्‌स).

वस्तु जो निकली है क्षतिग्रस्त व्यक्ति की सम्मति से वहां हो अथवा कतिपय मामलों में वहां जहां कि उसका कानूनी प्राधिकार मिला हुआ हो। देखिए हाल्सबरीज लॉज ऑफ इंग्लैंड, जिल्द 45, पैरा 1305। इंग्लैंड में इस बारे में निर्णयज विधि का काफी विकास हुआ है कि भूमि का स्वाभाविक प्रयोग क्या है और अस्वाभाविक प्रयोग क्या है और ठीक-ठीक रूप में वे परिस्थितियां कौन-सी हैं जिनमें इस नियम का अनुसरण नहीं किया जा सकता। किन्तु हमारे लिए उन विनिश्चियों पर जो कि इस नियम के मापदंडों को अधिकथित करते हैं, विचार करना आवश्यक नहीं है। क्योंकि आधुनिक औद्योगिक समाज में जहां कि अत्यधिक विकसित वैज्ञानिक और तकनीकी ज्ञान है, जहां परिसंकटमय अथवा अंतर्निहित रूप से खतरनाक उद्योगों द्वारा ऐसे विकासशील कार्यक्रम करना आवश्यक है। यह नियम, जो कि उन्नीसवीं शताब्दी में उस समय बनाया गया था जब विज्ञान और प्रौद्योगिकी में ये सभी विकास नहीं हुए थे और इसलिए वह नियम सांविधानिक मापदंडों और आधुनिक अर्थव्यवस्था तथा सामाजिक संरचना की आवश्यकताओं की संगति में दायित्व के किसी मापदंड को विकसित करने में कोई मार्गदर्शन नहीं कर सकता। हमें इस नियम से अपने को आबद्ध समझना आवश्यक नहीं है। यह नियम एक पूर्णतः भिन्न अर्थव्यवस्था के संदर्भ में बनाया गया था। विधि को शीघ्र परिवर्तनशील समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विकासशील होना चाहिए और देश में होने वाले आर्थिक विकासों के अनुरूप होना चाहिए। जैसे-जैसे नई स्थितियां पैदा होती हैं वैसे-वैसे ऐसी नई स्थितियों का मुकाबला करने के लिए विधि का विकास होना चाहिए। विधि निर्जीव नहीं बनी रह सकती। हमें नए सिद्धांतों का विकास करना होता है और ऐसे-ऐसे नए मापदंड अधिकथित करने होते हैं जो ऐसी नई समस्याओं को पर्याप्ततः सुलझा सकें जो एक उच्च औद्योगिक अर्थ-व्यवस्था में पैदा होती है। हम इंग्लेंड अथवा किसी अन्य देश में विद्यमान विधि का निर्देश करके अपनी न्यायिक विचारधारा को सीमित नहीं होने देंगे। हमें किसी विदेशी विधिक प्रणाली की बैसाखी का सहारा लेने की अब आवश्यकता नहीं है। हम निःसंदेह उन सभी दिशाओं से प्रकाश लेने के लिए तैयार हैं जहां से वह हमें प्राप्त होता है किन्तु हमें स्वयं अपना विधिशास्त्र निर्मित करना है और हम इस दलील को मात्र इसलिए स्वीकृति नहीं दे सकते कि नई विधि सर्वथा और पूर्ण दायित्व के नियम को, परिसंकटमय या खतरनाक दायित्व के मामलों में मान्यता प्रदान नहीं करती है अथवा इंग्लैंड में यथा विकसित **रैलेंड्स बनाम फ्लैचर**[1] में अधिकथित नियम कतिपय परिसीमाओं और उत्तरदायित्वों को मान्यता प्रदान करता है। हम भारत में अपने हाथों को पीछे की ओर रोके नहीं रहने दे सकते और मैं दायित्व से एक नए सिद्धांत को प्रतिपादित करने का साहस कर रहा हूं जो कि इंग्लैंड के न्यायालयों ने नहीं किया है। हमें स्वयं अपनी विधि विकसित करनी है और यदि हमारा यह निष्कर्ष है कि किसी अप्रायिक स्थिति से निपटने के लिए, जो कि परिसंकटमय और अंतर्निहित रूप से खतरनाक उद्योगों के कारण, जो कि औद्योगिक अर्थव्यवस्था के अंग हैं, पैदा हो गई है और जो भविष्य में पैदा होनी संभाव्य है, दायित्व के नए सिद्धांत का निर्माण करना है तो ऐसा कोई कारण नहीं है जिससे हम दायित्व के ऐसे सिद्धांत को विकसित करने से मात्र इस कारण सकुचाएं क्योंकि ऐसा इंग्लैंड में नहीं किया गया है। हमारा यह मत है कि कोई ऐसा उद्यम जो कि परिसंकटमय या अंतर्निहित रूप से खतरनाक उद्योग में लगा है, जो कि कारखाने में काम करने वाले और

---

[1] एल० आर० (1868) 3 इंगलिश एण्ड आइरिश अपील केसेज (हाउस आफ लार्ड्स).

परिवर्ती क्षेत्रों से रहने वाले लोगों के स्वास्थ्य और क्षेम के लिए एक बहुत बड़ा खतरा है, समुदाय के प्रति पूर्ण और अप्रत्यायोजनीय कर्त्तव्य यह सुनिश्चित करने के लिए रखते हैं कि उस क्रियाकलाप के, जो कि उस द्वारा किया जाता है, परिसंकटमय या अंतर्निहित रूप से खतरनाक प्रकृति के होने के कारण किसी व्यक्ति को कोई हानि न पहुंचे। ऐसे उद्यम के बारे में यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि वह यह व्यवस्था करने की बाध्यता के अधीन है कि परिसंकटमय या अंतर्निहित रूप से खतरनाक क्रियाकलाप, जिसमें वह लगा हुआ है, क्षेम के उच्चतम मानकों के अनुसार संचालित किया जाए और यदि ऐसे क्रियाकलाप के कारण कोई नुकसान पहुंचता है तो उस उद्यम को ऐसी हानि के प्रतिकर के लिए पूर्ण रूप से दायित्वाधीन समझा जाना चाहिए और उद्यम उत्तर में यह नहीं कह सकता कि उसने सभी युक्तियुक्त सावधानी बरती थी और हानि उसकी ओर से की गई किसी उपेक्षा के बिना हुई है। चूंकि परिसंकटमय और अंतर्निहित रूप से खतरनाक क्रियाकलाप के कारण, जो कि उद्यम द्वारा किया जा रहा था, जिन व्यक्तियों को हानि पहुंची है, वे उस वस्तु की परिसंकटमय, निर्मिति या किसी अन्य संबंधित तत्व की, जिसने हानि पहुंचाई है, संक्रिया को अलग करने की स्थिति में नहीं होंगे, अतः उन्हें परिसंकटमय या अंतर्निहित रूप से खतरनाक क्रियाकलाप को करने के सामाजिक खर्चे के तौर पर ऐसी हानि कारित करने के लिए पूर्ण रूप से दायित्वाधीन अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए। यदि उद्यम अपने लाभ के लिए परिसंकटमय या अंतर्निहित रूप से खतरनाक क्रियाकलाप करने के लिए अनुज्ञात किया जाता है तो विधि की ओर से यह उपधारणा की जानी चाहिए कि इस प्रकार की अनुज्ञा इस शर्त के अधीन है कि वह उद्यम ऐसे परिसंकटमय या अंतर्निहित रूप से खतरनाक क्रियाकलाप के कारण होने वाली दुर्घटना के खर्चों को भी अपने प्रकीर्ण खर्चों में समुचित मद के रूप में आमेलित करेगा। प्राइवेट लाभ के लिए ऐसे परिसंकटमय या अंतर्निहित रूप से खतरनाक क्रियाकलाप को केवल इस शर्त पर ही बर्दाश्त किया जा सकता है कि ऐसे परिसंकटमय या अंतर्निहित रूप से खतरनाक क्रियाकलाप में लगा हुआ उद्यम उन सभी व्यक्तियों की क्षतिपूर्ति करे जो ऐसे परिसंकटमय या अंतर्निहित रूप से खतरनाक क्रियाकलाप को चलाए जाने के कारण हानि उठाते हैं और इस बात का ध्यान न रखा जाए कि उसे सावधानीपूर्वक चलाया जा रहा है अथवा नहीं। यह सिद्धांत इस आधार पर भी कायम रखा जा सकता है कि केवल उद्यम को ही परिसंकट या खतरों के विरुद्ध रक्षोपाय करने और खतरों को जानने का स्रोत होता है और विशेष खतरों के विरुद्ध चेतावनी देने की व्यवस्था होती है। अतः हम यह अभिनिर्धारित करेंगे कि जहां कोई उद्यम किसी परिसंकटमय या अंतर्निहित रूप से खतरनाक क्रियाकलाप में लगा हुआ है और ऐसे परिसंकटमय या अंतर्निहित रूप से खतरनाक क्रियाकलाप के प्रवर्तन में दुर्घटना के कारण किसी को कोई हानि पहुंचती है, जैसे कि उदाहरण स्वरूप विषैली गैस के निकलने से पहुंचती है, वहां उद्यम उन सभी को प्रतिकर देने के सर्वथा और पूर्ण दायित्व के अधीन होगा जो ऐसी दुर्घटना से प्रभावित होते हैं और ऐसा दायित्व उन अपवादों में से किसी के अध्यधीन नहीं होगा जो कि **रेलैंड्स** बनाम **फ्लैचर**[1] में अधिकथित नियम के अधीन सर्वथा दायित्व के अपकृत्यात्मक सिद्धांत के संबंध में हैं।

---

[1] एल० आर० [1868] 3 इंगलिश एण्ड आइरिश अपील केसेज (हाउस आफ लार्ड्स).

32. हम यह भी इंगित करना चाहेंगे कि पूर्ववर्ती पैरा में निर्दिष्ट मामलों में प्रतिकर की मात्रा उस उद्यम की विशालता और सामर्थ्य के अनुरूप होनी चाहिए क्योंकि इस प्रकार के प्रतिकर का प्रभाव भयोपरत होना चाहिए। जितना बड़ा और समृद्ध उद्यम होगा उसके द्वारा उतनी ही अधिक प्रतिकर की रकम उस हानि के लिए दी जानी चाहिए जो कि उसके द्वारा परिसंकटमय या अंतर्निहित रूप से खतरनाक क्रियाकलाप किए जाने के कारण दुर्घटनावश हुई है।

33. क्योंकि हम इस प्रश्न को विनिश्चित नहीं कर रहे हैं कि क्या श्रीराम अनुच्छेद 12 के अर्थांतर्गत एक प्राधिकारी है जिससे कि वह अनुच्छेद 21 के अधीन मूल अधिकार के अनुशासन के अधीन आता है, अत: हम यह नहीं समझते कि उन व्यक्तियों द्वारा, जिन्होंने अभिकथित किया है कि वे ओलियम गैस के रिसने के कारण प्रभावित हुए हैं, प्रतिकर के दावों की जांच के लिए कोई विशेष मशीनरी गठित करना न्यायोचित होगा। किन्तु हम निदेश देते हैं कि दिल्ली लीगल एंड एडवाइज बोर्ड उन सभी व्यक्तियों के मामलों को प्रस्तुत करे जिन्होंने ओलियम गैस के कारण हानि उठाने का दावा किया है और समुचित न्यायालय में श्रीराम के विरुद्ध प्रतिकर का दावा करने के लिए उनकी ओर से अनुयोग फाइल करे। प्रतिकर का दावा करते हुए ऐसे अनुयोग दिल्ली लीगल एड एंड एडवाइज बोर्ड द्वारा आज से दो मास के भीतर फाइल किए जाएं और दिल्ली प्रशासन को निदेश दिया जाता है कि वह दिल्ली लीगल एड एंड एडवाइज बोर्ड को ऐसे अनुयोगों को फाइल करने और अभियोजन के प्रयोजनार्थ आवश्यक निधि की व्यवस्था करे। उच्च न्यायालय एक या अधिक न्यायाधीश, जो कि ऐसे अनुयोगों पर विचारण करने के प्रयोजन के लिए आवश्यक हों, नामनिर्दिष्ट करेगा जिससे कि उनका निपटारा शीघ्रता से किया जा सके। जहां तक कि संयंत्र को अन्य स्थान पर ले जाने के विवाद्यक का संबंध है या अन्य विवाद्यकों का संबंध है, इस रिट पिटीशन की सुनवाई 3 फरवरी, 1987 को की जाएगी।

तदनुसार आदेश दिया गया।

मा०

[1987] 3 उम० नि० प० 635

टेलिकम्यूनिकेशन रिसर्च सेंटर साइंटिफिक आफिसर्स (क्लास-I) एसोसिएशन और अन्य

बनाम

भारत संघ और अन्य

16 जनवरी, 1987

न्यायमूर्ति ई० एस० वेंकटरामय्या और के० एन० सिंह

संविधान, 1950—अनुच्छेद 14 और 16 [सपठित साइंटिफिक एंड टैक्निकल आफिसर्स ग्रेड-I (टेलिकम्यूनिकेशन्स रिसर्च सेंटर ऑफ दि पोस्ट्स एंड टेलीग्राफ डिपार्टमेंट)